

पतिव्रते

सती, सुनीति, गान्धारी, सावित्री, दमयन्ती और शकुन्तला के पातिव्रतपूर्ण पवित्र जीवनचरितों का संग्रह

> अयागेन्द्रनाथवेंसु-लिखित बेंगला पुताक का हिन्दी-अनुवाद

> > ग्रनुवादक

श्रीजनार्दन भा .

प्रकाशक इंडियन प्रेस, प्रयाग १९१७

सर्वाधिकार रचित

Printed and published by Apurva Krisium Bose, at the Indian Presu, Allahabad.

पतित्रता

पहला ऋख्यान

संती

विद्वार में जिस जगह गङ्गा हिमालय से प्रकट हो पृथ्वी पर आई हैं, उसके सामने की सूमि की कनसल प्रदेश कहते हैं। इस प्रजापति

र्क^{क्ष} पराक्रमी राजा उस समय दूसरान था। इतनी ध्रतुल सम्पत्ति के स्वामी होकर भी वे वड़े तपस्त्री थे।

वहे प्रतापी थे। उनके जैसा ऐश्वर्यशाली श्रीर

उन्होंने कितने यज्ञ और कितने दान किये ये । कितने अच्छे अच्छे त्रवें का अनुष्ठान किया या, उनकी संख्या नहीं । इस कारण सब सी कहा करते ये कि—"धर्म और कमें में राजा दत्त की बरा-

वरीकरने वाला कोई नहीं है।"

ह की राजधानी कनखल शोभा में इन्द्र की असरावती को भी ज हुए शी। कई हज़ार वर्ष वीवने पर अब भी कनखल की प्राकृतिशोभा में कुछ अन्तर नहीं पढ़ा है। इसके समीप ही वितराविहमालय के असंख्य ज्ञाति-उन्न, वर्ष से टॅंके शिखर निश्चल मेघमाला की भाँवि खहें हैं। इस प्रदेश के भीवर से होकर गङ्गा का प्रवाह साँप की भाँवि कुटिल गित से घूमला फिरता वहें तीज़ नेग से नीचे की ओर वह रहा है। कनस्वल में गङ्गा की क्या ही विलक्षण गोमा है, जिसका वर्णन नहीं हो सकता। गङ्गा का जल इतना स्वच्छ कि उसके तलस्थित छोटी खोटी मललियाँ तक दें। पहली हैं। वहीं पारे सा सफ़ेद, कहीं काकाश सा नीला जल देखते ही मन में शान्ति छा जाती है और ताप का नाश होता है। वहें वहें महात्मा, ऋषि, अनिगण क्यों गङ्गा की महिसा से इतने ग्रुग्थ थे, जो लोग यह जानना चाहते हों ने एक बार हरिद्वार छोर कमलल प्रदेश की गङ्गा का दर्शन करें।

गङ्गा का स्रोत जो कनखल के एक तरफ से होकर वह रहा है, उसका नाम नीलधारा है। महाराज दच का सियमण्डित राज-भवन इसी नीलधारा के किनारे शोभायमान था। बरसाद के मैसस में नदी का प्रवाह प्रासाद के पद को पखारता हुआ वह रहा था और प्रासाद के उपर रहने वाले उसकी अविरत कलकल व्यनि को सुनते सुनते सुलपूर्वक सी जाते थे।

राजा दच के बहुतेरी कन्यायें थां। सरोवर जैसे फूले हुएं कमज़ों से और आकाशमण्डल जैसे चमकदार तारागयों से स्योन मित होता है, राजा दच का घर भी वैसे ही राजकुमायिं से शोभायमान हो रहा था। कन्याओं की मोहिनी सूर्ति ने कर राजा और राजी के हृदय आजन्द से पुलकित होते थे।

राजकुमारियाँ प्रति दिन नीलघारा में सान करने वीं और गङ्गा के निर्मल जल में मलीमांवि नहाती थीं । कमी ग^{ड़ी} किनारे सती ।

₹.

पढ़ती थीं। इस प्रकार जलकोड़ा करके उजले, पीले, नीले श्रीर लाल रङ्ग को पत्थर को छोटे छोटे दुकडों को बटोर कर घर ले जाती थीं। यह देख कर राजा रानी दोनों हँसते श्रीर बेटियों से कहते थे:--

की वालू पर इधर उधर देहिनों और कभी जल के भीतर घस

''हमारे घर में ढेर के ढेर मिंग मोती पड़े हैं तुम लोग इन पत्यरी की लेकर क्या करोगी ?"

राजकुमारियाँ कुछ न बोलती, हैंस कर चुप हो रहती थीं। वे हीरे मोतियों को फेंक कर उन्हीं पत्थरों से अपने खेलने के

घर को सजाती थीं। राजकुमारियों की बाल्यावस्था वीत चली. क्रमगः वे सब बढ़ी हुई । यह देख दत्त प्रजापित ने बढ़ी घूम-

धाम के साथ उन सब कन्याओं का व्याह कर दिया। एक से एक सुन्दर और गुखवान जामाता पाकर राजा और रानी के आनन्द की सीमा न रही। विवाह होने के पीछे एक एक कर सभी

राजकन्याये ससुराल जाकर सुखपूर्वक रहने लगी। दच की केवल एक कन्या कुमारी बच रही, जिसका नाम सती था। सती सबसे छोटी होने के कारण माँ बाप की बड़ी दुलारी थी। उस पर मा बाप बहुत स्नेह रखते थे।

🖊 राजा रानी ने सन में सोचा था, ''सती जब बड़ी होगी, तब क्र कन्यात्रीं की अपेचा विशेष समारोह के साथ सुन्दर सुयोग्य से उसे व्याह देंगे।"

सती को रूप-गुण की वर्णना कहाँ तक की जाय ? यद्यपि कन्याये सभी अनुपम सुन्दरी थीं, किन्तु सती के साथ किसी

के रूप की तुलना न वी। वह सभी में परम सुन्दरी थी। खी का रूप उसके शरीर की कान्ति या उसके प्रांख, कान, नाक प्रांद के गठन में न था। सवी का रूप या उसके पवित्रमान में, उसकी दिन्य ज्योति में। को कोई उसे देखता, उसकी टकटकी वैंघ जाती थी। उसे यद्दी जान पड़ता था कि साजात देवी उसके सामने खड़ी. — हैं। साधु सन्यासी कुमारिका सवी को देख कर जगदस्या के रूप का प्यान करते थे थीर भक्तिमान से उसे प्रथास करते थे।

सती का स्त्रभाव भी अन्य राजकुमारियों से विलच्या या। धीर राजक्रमारियां, भूषण, वसन और खुझार के पीछे दिन रात व्यव रहती थीं, किन्तु सती का ध्यान इन उपमान्य वस्तुंश्रों की श्रोर न था। राजकन्याओं में कोई संवरंगा कपड़ा कोई कमलपत्ती रङ्ग का कोई नील रङ्ग का वस्त्र पहनना, पसन्द करती थीं, किन्तु सती गेरुवा रङ्ग का कपड़ा बहुत चाह से पहनती थी । श्रीर राजकन्याश्री के कण्ठ में सोहती थी मोती की माला धीर हाथ में सोहता घा द्वीरकजिटत सोने का कडूना । किन्तु सती के कण्ठ में स्फटिक की माला, श्रीर हाथ में रुद्राच का वलव सुशोभित या। श्रीर राज-कुमारियाँ देह में लगाती थीं चन्दन, कस्तूरी, केसर ब्रादि सुगन्धित द्रव्य, किन्तु सती के जलाट और याहें में शोभा पाता घा पिता भे यज्ञ-कुण्ड का सस्स । ध्यार राजकन्यायें दासियों के द्वारा वड़े यत्न से चीटी ग्रुँधवाती धाँ। किन्तु सती के लक्वे लम्बे केश विना यल को धरती पर लोटते थे। कभी वह सिर में तेल न देती थी। जम तब रूखे स्नान के अनन्तर वालों को समेट कर जटा की आंति

र्वोध लेती थी। रानी सवी का यह भाव देख कर बहुत दुखी होती

थो। अविवाहित किशोरी की वेष-मूण के सम्बन्ध में ऐसी उदा-सीनता देख कर कैन माता होगी जो धैर्य रख सकेगी ? इसलिए वह कभी कभी किसक कर सती से कहती थी:---

बेटी, जुस ध्रव धीरे धीरे सथानी होती जा रही हो, किन्तु तुम्हारी यह कैसी समक्ष है ? न तुम कभी अच्छा कपड़ा पहनती हो, न कोई अच्छा गहना । कहां तक कहूँ, तुम सिर के बाल तक नहीं बाँधती। इस तरह रहने से लोग तुम्हें पगली कहूँगे। कोई तुम से व्याह करना न चाहेगा।

राजा दक्त भी सती का भाव देख कर ज़ुब्ध रहते थे। किन्तु बह सरताता की मूर्ति, समता की पात्री, और आंख की पुतती थी, इसी से वे उससे ज़ुळ न कहते थे। विशेष कर सती में यह एक दोष था कि वह वड़ी की मज़हदया थी, थोड़े ही में उसके कमता से नयनों में आंद्र भर आते थे। इस कारण वे सती को लक्ष्य करके रानी से कहते थे— ''मेरी बेटी पगली है, दैव न करें कि यह किसी पागल के दाख पड़े।''

जब सती व्याहने थोग्य हुई तब दत्त ने योग्य वर हुँ हुने की इच्छा से अपने भाई नारद सुनि को बुलाकर कहा— "आप सर्वत्र जाते हैं, क्या राजा क्या रहूँ, क्या गृही, क्या संन्यासी कोई ऐसा व्यक्ति नहीं जिसके साथ आप का परिचय न हो। मेरी सती के लिए आप एक अच्छा वर हुँ ह कर ला दें तो मैं विशेष जपकृत होऊँ।"

"जो आज्ञा" कहकर नारहजी बाहर निकले। अनेक स्थानें में पूमते फिरते कनखल लीट कर उन्होंने राजा दत्त और उनकी रानी से कड़ा—''मैं जापकी सती के लिए एक अद्यान्त योग्य कर ठीक कर आया हूँ। सती के योग्य वैसा और कोई वर मेरी क्टि में नहीं खाता।''

दच ने बढ़ी श्रातुरता से पृद्धा—"कैसा वर । वे कीन हैं ?" नारद ने कहा—"वे कैलासपुरी के राजा हैं।"

सुनकर दच की भी ज़रा उत्पर को वन गई। उनके कुछ पूछने की पूर्व ही रानी ने कहा—"कैछासपुरी ? वह तो यहाँ बहुत दूर है। वहाँ जाने का मार्ग भी ते। सुगम नहीं है। वहाँ सती का व्याह होने से में उसे बरावर न देख सकूँगी। देखने की कैंगन वात उसका कुश्छ-समाचार तक जल्दी न मिलेगा।"

नारद्—''श्रापको किस वात को कसी है जो इच्छा करने पर दूरश्च होने के कारण आप सती का संवाद न ले सकेंगी? श्राप सती को बराबर देखती रहें यह अच्छा या उसे योग्य वर के हाथ देकर आप निश्चिन्त हो रहें—यह अच्छा? यदि आपको सती योग्य वर पाकर सुखपूर्वक रहे तो आप उसे हमेशा न देखें, इसमें क्या हानि?''

राजा और रानी ने कुछ देर इस वात को मन में साच कर निश्चय किया कि नारद जी ठीक कहते हैं।

दच ने पूछा—"वर पहे लिखे हैं ? उनकी वृद्धि कैसी है ?" नारद—"वृद्धि-विद्या में उनकी वरावरी करने वाला कोई नहीं है। वेद, वेदान्त, और तन्त्र आदि ऐसा कोई शास नहीं जो उनका जाना न हो। वे सभी विद्याओं में परङ्ग्य हैं। उनकी वृद्धि-विद्या कैसी है वह आप इतने ही से समक्त सकेंगे कि स्वयं वशिष्ठ ने उनसे वेद, परशुराम ने धनुर्वेद श्रीर मैंने गान्धर्व-निवा सीखी है।"

यह सुनकर दत्त का मुँह प्रफुल्लित हो गया। उन्होंने कहा—''वर का बल पराक्रम कैसा है ?''

नारद — ''उसका परिचय उनके पिनाक धनुष से ही हो सकता है। उसका प्रत्यचा चढ़ाना तो दूर रहा, भूमण्डल में ऐसा कोई नहीं जो उसे उठा सके। कैलासपित ने इसी धनुष पर वाग चढ़ा कर त्रिपुरासुर को मारा था।"

रानी---''वर देखने में कैसा है ?"

नारद—"यह आपसे क्या कहूँ। वैसा शाल (साल्) वृत्त सा लम्बा और दृढ़ शरीर, वैसा आजातुबाहु, वैसा आकर्ष-विशालनयन, वैसी कपूरसी गोराई, वैसा सतत प्रसन्नसुल किसी का नहीं देख पढ़ता। वे महापुरुष सती ही के दहने भाग में शोसा पाने योग्य हैं।"

सती की एक सखी, जिसका नाम विजया था, किसी कार्यवरा रानी के पास आई थी। सती के व्याह की वातचीत सुनकर वह दीड़ कर सती के पास गई और वेल्ली—"सखी, सुम्हारा मनेरथ /सफल हुआ। तुम इतने दिन जिनके लिए तपस्था कर रही थीं, जिनका व्यान तुम्हारे मन में आठों पहर बना रहता है, उन्हीं कैलासपित के साथ सुम्हारे व्याह की बातचीत हो रही है।"

सती कुछ न बोली। केवल अपने दोनों कर-कमलों को जोड़ कर उत्तर ग्रीर गुँह करके उसने शंकर को प्रणाम किया। इधर फिर रानी ने नारद से पूछा—"वर के पास धन-सम्पत्ति

ς

भी है ?" सारद—"रलगर्भ कैलास उनका राज्य है। यत्तों के राजा

नारद--- ''रलगर्भ कैलास जनका राज्य है। यत्तों के राजा कुवेर जनके भण्डारी हैं।"

धन के विषय में नारह को इससे अधिक परिचय देना न पड़ा। कैं।न ऐसी धनाभिलापियी को होगी जिसने धनाधिप कुनेर का नाम न सुना होगा। हीरा, मोती, मानिक, नीलम आदि भाँति भाँति के रल्ल जिसके घर में पाये जा सकते हैं वही कुनेर जिसके भण्डार-नवीस हैं उसकी अनुल ऐश्वर्यराशि का हिसाब कैं।न कर सकता है ?"

रानी ने चमेंग कर पूछा—"वर के साता, पिता, भाई छीर वहन जीवित हैं ?"

मारद ने युस्कुरा कर कहा—''वर में यदि कुछ दोप है तो इतना हो। उनके वंश में कोई दूसरा नहीं है। इसका धाप कुछ सोष न करें। सास ससुर सदा सब के जीते नहीं रहते। व्याह होने के साथ हमारी सती कैंडास की रानी डोगी।''

रानी ने नारद की श्रोर स्रोरी चढ़ा कर देखा।

नारदनी वेाले—"मैं वर के विषय में दो एक वात और ध्रापसे कह देना जीवत समम्भवा हूँ। वह दोप हो या गुख, ध्राप जस पर विचार करतें। कर्तव्य ध्रक्तवेंच्य का निर्णय पहले ही कर लेना चाहिए। पीछे ध्राप लोग सुन्ते कोई इल्ज़ाम न दें, इसलिए जो जानवा हूँ वह ध्राप लोगों से अभी कह सुनावा हूँ। वर संसार से एकदम विरक्त है। उसके लिए जैसा घर वैसा मरघट, जैसा चन्दन

÷

वैसी ही चिवा की भरम। वे सदा चिन्ता में सम्र रहते हैं, किन्तु उनकी चिन्ता कुछ अपने सुख-सम्मोग के लिए नहीं, संसार के कल्याया के लिए। उनका अधिकतर समय रमशान में रहकर दुर्दें की हुड़ी की परीचा में, बङ्गुच में रहकर पीधों के गुणापुगुण के विचार में, श्रीर पहाड़ की गुफा में रहकर खान से निकलने वाली कस्सुओं के तत्त्वनिरूपया में स्वतंत होवा है। वन्त्वनिरूपया के लिए वे विचपान में और सर्प के घारया में भी कभी कुण्ठित न हुए। इन्हीं कारयों से वे गृही होकर मी संन्यासी और राजा होकर मी फ़क़ीर हैं। मैंने वर के देश-गुख, आचार-अनाचार सभी आपको सुना दिये। अब आप लोगों का जैसा विचार हो करें।"

यह सुनकर दच का सुँह सारी हुआ। वे नार नार सिर हिजाने लगे ! क्या करना चाहिए, इसका वे कुछ निश्चय न कर सके । रानी की एक चतुर दासी वहाँ बैठी थी । उसने रानी को चिन्तत देखकर कहा—"महारानी जी, आप कुछ चिन्ता न करें ! वे मां-आप के कितने ही ऐसे लड़के हैं जो घरवार का काम छोड़ कर इधर उधर धूमते, फिरते हैं । हमारी सती यदि और राजकुमा-रियों की भाँति चतुर होगी तो एक ही महीने में अपने पित को पक्षा गृहस्थ बना लेगी।"

यह सुनकर रानी को कुछ वैथे हुआ। उसने पित से कहा— "सब गुण एक साथ कहाँ मिलेंगे ? लड़की को योग्य वर के हाथ सोंप देना माँ बाप का कर्तव्य है, हम इस कर्तव्य का पालन करेंगे। इसके अनन्तर लड़की का जैसा भाग्य होगा। वर जब रूप, गुण, वल, पराकम और घन में किसी से न्यून नहीं हैं तव सती को उन्हीं के साथ व्याह देने की भेरी इच्छा होती है। फिर महा-राज की जैसी इच्छा हो।"

दत्त—"विधाता को जो करना है, वह मैं समक गया। मुक्ते हर या कि लड़की जैसी पगली है, कहीं वैसे पागल वर के हाथ न पड़े। ठीक वही हुआ। । जब तुम्हारी इच्छा है तब इसी वर की बात स्थिर रहे।"

इस पर प्रथिक तर्क-विवर्क करने की व्यवस्थकता न रही । फैलासपित के साथ सवी के ज्याह की वातचीत ठीक हुई । महाराज दच चड़ी धूमधाम के साथ जड़की के व्याह की तैयारी करने लगे ।

शुभ दिन शुभ घड़ी में सती का ज्याह हो गया। राजभवन जितना दीपमाला से देदीप्यमान न हुखा उतना राजकुमारियों की उज्ज्वल रूपराशि से हुखा। नारह ने वर के सम्बन्ध में जो कुछ कहा था, सच कहा था। जटाजूट के मीवर से भी उनका सुख-मण्डल पूर्णचन्द्र की मीवि और भर्मल्येप के मीवर से भी उनका सुख-प्रारीर की गोराई भलक रही थी। यह देखकर राजधराने की जितनी छियां थां सब सुग्ध हो रहीं। महत्ले भर की छियों ने एक स्वर से कहा—"जैसी सती है, वैसा हो उसे मणवान ने वर दिया। केवल रानी के मन में यह सीचकर कुछ जोम हुखा कि नारह में जो उनके अतुल ऐस्वर्थ की वात कही थी, वह दूरहे के ज्यवहार से कुछ ज़ाहिर न हुई। विवाह के दिन भी उनके गले में रहाच की माला, रारीर में मस्स खीर कमर में वाघ का चमड़ा था। सती के लिए भी वे अपना ही सा भूषख-वसन खाये थे। यह देखकर रानी ज्ञुच्ध हो रही । यह क्या ! यदि ऐसे महोत्सव में उन्होंने सती को अच्छा मूपस-वक्ष न दिया ते। फिर कव देंगे ? किन्त नारद तो ऐसे नहीं हैं जो मूठ बोलेंगे। कदाचित् वे घर की श्रसली होलत न जानते हीं ⁹³

रानी को इस प्रकार सोच-सागर में हुबी हुई देखकर निमन्त्रित बन्धुपन्नियों में से एक ने कहा—"जब दूरहे के माँ-वाप, माई-बन्धु या माँ-बहन कोई नहीं है वब दूरहे की विवाह के योग्य बख कौन सजाकर पहनाता, कौन उनका विवाहकालिक वेश-विन्यास करता। दूरहा स्नाप ही तो अपनी सूरत सँवार कर व्याह करने नहीं जाता है। ये जैसे, जिस पोशाक में अपने घर पर बराबर रहा करते थे,

वैसे ही, उसी पोशाक में, यहाँ आये हैं । आप इसके लिए सोच न करे'।" सुख-संभोग लिखा होगा तो अवश्य ही होगा । आप खर्य रानी हैं

एक दूसरी क्षी ने कहा-"सती के माग्य में धन-सम्पत्ति का श्रीर यह ब्रापकी दुलारी राजकुमारी है। इसे किस बात का कष्ट होगा १ ऐसी एक लड़की की कीन बात, दस लड़कियों का भी म्राप भूलीभाँति पालन-पोषण कर सकती हैं।" यह वात रानी की अच्छी न जगी। उन्होंने नारद से पूछा--

िश्रापने जो दूल्हे की उतनी धन-संस्पत्ति की बात कही थी, उसका कुळेशमाया देखने में न आया। दूल्हा मेरी सती के लिए न कोई अञ्चे कपड़ा लाया न कोई भूषसा। विवाह के समय में लड़की

को रेह्न की साला ! यह क्या ? मेरी बेटी संन्यासिनी तो है (राजकन्या को आपने कंगाल से तेा न व्याह दिया ?" नारद—"मैंने बापसे कोई बात मूँ उन कही थी। मेरे वचन पर आप विश्वास करें। आपको सती सचसुच ही राजराजेश्वरी हुई है। अभी आप कुछ न बोलें, कुछ दिन वैर्थ से रहें। सती जब एक बार ससुराल से होकर आवेगी वब आप देखेंगी कि सती का कैसा भूग्य-वसन है। वब आप समर्भेगी कि आपके जागाता कैसे ऐश्वर्यशास्त्री हैं।"

यहं सुन कर रानी और उनकी सब सहचरी प्रसन्न हुई'। दूल्हें के व्याह के समय का पहनावा ग्रीहाबा श्रीर उनके धरातियों की श्रजीय सूरत शक्त देख कर राजा दच की भी पूरी ,ख़ूरी न हुई । उनके अन्यान्य जमाई और नातेदार लोग हाथी, घेखे थ्रीर रथ पर ब्राये घे, किन्तु उनके नये दासाद श्राये थे, एक . खूब मोटे ताज़े, ऊँचे सींग वाज़े वैत पर । और जामा-ताओं के साथ आये थे, हाथ में सोने की छड़ी छत्र आदि लिये ष्राच्छे प्रच्छे भूपक्ष-वसन से सुसक्तित सुन्दर नौकर, किन्तु नये दामाद के साथ भागे थे हाथ में त्रिशृत तिये नक्ष धड़क्ष नन्दी। बरावियों का भयदूर ब्राकार बीर ब्रद्धत भाव देख कर कनखत के रहने वाले श्रीर लोग भी भयमीत श्रीर चिकत हुए। उन लोगों ने भहा, "महाराज ने यह कैंसा सम्बन्ध किया है ?" किन्तु जो उनमें सममदार थे, उन्होंने सक्की सममा दिया कि यह कुछ र्रहरे बाव नहीं है, पहाड़ी जोगों का रङ्ग रूप श्रीर भाव ही ऐसा होता है। वर का निरुद्धल माव, सरल ज्यवहार श्रीर सदा प्रसन्न मुख देख कर प्रवासियों के सन का चीस कमशः जाता रहा।

राजा, रानी और पुरवासियों के मन का भाव ऐसा ही या।

सती के मन का माव कैसा या यह कहने की आवश्यकता नहीं। साधु-संन्यासियों के मुँह से जिनकी प्रशंसा सुन कर सती जिन्हें इष्टरेव समभ्र कर नित्र हृदय में पूजवी थीं, ग्राज वही उसके सामने पति के रूप में विराजमान हैं। सती के मन का भाव क्या शब्दों के द्वारा समस्ताया जा सकता है ? चारों आंखें बराबर होते ही सती ने सम्पूर्ण रूप से अपने को कैशासपति के चरणकमलों में द्यर्पित कर दिया। उनका वह चारुचन्द्रविनिन्दक सँह. उनका वह रजत पहाड़ सा गार शरीर, ऐरावत गजशुण्ड सा विशाल दीर्घ बाह, किवाड के तख्तों की सी चौड़ी छाती, कमल से भी कोमल भीर सुन्दर चरण सती के मन में विहरने लगे। सती ने ध्यानस्थ शहर की रमगीय मृतिं से निवेदन किया—''नाय ! प्राप ही सती के सर्वस्त हैं। प्राप ही के लिए सती का जन्म हुआ है। ईश्वर सुभो श्रापकी सप्तधर्मियी होने की योग्यता दे। सुक्ते वह ऐसा ज्ञान दें कि मैं ग्रापको चरहों की मलीमांति सेवा कर सक्तें।"

कि मं आपक चर्या को महामात सवा कर सकू।"
व्याह होने के पीछे सती शङ्कर के साथ कैजासपुरी गई।
सती के आगमन से कैजासपुरी ने नवीन शोमा धारण की।
फूलों में सुगन्ध बढ़ गया। पिचयों की सङ्गीतव्यक्ति में विशेष
माधुर्य का अनुमन होने लगा। विरक्त कैजासपित सती को पाकर
संसारी हुए। धर्म-कर्म के प्रमाव से सती पति की अर्घोड्विनी वन
सुख मीगने लगी।

इस प्रकार कुछ काल ज्यतीत होने पर वसन्त ऋतु के आने से कैलास ने एक अपूर्व ही शोभा घारण की । दिन रात लगातार पाला पढ़ने से कैलास के दुच-खतागण फूल-पत्तों से रहित होकर श्रीहीन हो गये ये। ऋतराज से उनकी यह दुईशा न देखी गई। उसने उन प्रस-जवाग्री की नव पद्धवें से सुरोभित कर दिया। सव पेढ़-पीधे हरे भरे ही गये। पर्वत-राज फैलास ने सफेद वर्फरूपी वसन त्याग कर शैवाल (सेवार) रूपी श्यामल वस धारण किया । **डजले. पीले. भ्रीर लाज भ्रादि रङ्ग रङ्ग के पूल विकसित होकर** कैनास की शोभा वड़ाने नगे। वर्ष गल कर सैकडों धाराध्यां की हर में नीचे की श्रोर प्रधावित होने जुगा। जाडे के बर से जी सब प्राची कैलास छोड कर उजा-प्रधान देश में चले गये थे. उनके ब्राने से फैलास फिर सर्जाव हो उठा । कैलास का उपवन फिर से लहलहा उठा । सारा उपवन असरों के फ़ैंकार से सर गया। जहाँ दहाँ पेड़ों पर कोयल खीर पपीहें। का मधूर शब्द सुनाई देने लगा । अत्यन्त भीरुखभाव कस्तूरी-मृग नये गूए के **हो।** में फिर पहाड़ के निस्त प्रदेश से धीरे थीरे वहाँ आने सुरो । चमरी गाय परवर के इकड़े पर खड़ी है।कर नाक के छेदें। की प्रसारित कर वसन्तकालिक शीतल मन्द सगन्धित वास के सुख-सर्श का अनुभव करने लगी। सारांश यह कि अनुसरज को प्रागमन से कैलास के पेट-पोधे, धीर लताओं ने तथा पशु-पत्तियों ने फिर से नई स्फ़र्रि श्रीर नवीन जीवन का लाम किया । पर्वत के एक बहुत केंचे दुर्गम शिखर पर महादेव के रहने

का असन्त सन्छ सुन्दर आश्रम वता था। उसके पारों ग्रेगर वड़े वड़े ऊँचे देवराक के पेड़ खड़े थे। वही उनके निवाससान की पारों ग्रोर से घेरे हुए क़िले का काम दे रहे थे। वह स्थान प्रसन्त रमग्रीय, निर्कत थीर प्रशान्त था। वरोवन की गम्मीरहा के साथ उपयन की शोभा सम्मिलित होने से वह स्थान तपश्चर्या ध्रीर गाईस्थ्य सभी सुखमोग के उपयुक्त हो रहा था। उस स्थान के समीप एक वहुत पुराना देवदाफ अपने डाल-पत्तों की चारी खोर फैलाये खड़ा था। उसके नीचे सपन छाया में स्वभावनिर्मित एक् शिलामय वेदी (चबूतरा) थी।

एक दिन साँभ को उसी चत्रुतरे पर व्याव्रचर्म का श्रासन बिछाये केलासपति वैठे थे । उनके वाम भाग में सती बैठी थीं। एक जङ्गली जता देवदार के पेड़ से लिपट कर भूम रही थी। सायङ्काल की हवा लग कर उस दृष्ठ की शाखायें सन्द सन्द डोल रही थीं, जिससे बीच बीच में देा एक फूल माड़ कर उन दोनों देव-दम्पती को ऊपर गिरते थे। मानो वे लता-वृत्त भक्ति-भाव से पुष्पा-जाली देकर जनकी पूजा कर रहे थे। शिव के सस्तक पर जटाजूट, कण्ठ में रहान्त की माला, सर्वाङ्ग में विशृति और कमर में वाघम्बर शोभा दे रहा था। सती का भी वेश-विन्यास पति के अनुकूत ही या। वह गेरुवा वसन पहने थी। गले में रुद्राच की माला और हाथों में चुड़ी के स्थानापत्र खाच शोभा दे रहा था। उसकी खुली हुई केशराशि पीठ पर से लटक कर धरती पर लोट रही थी। उन दें।नें। के पास ही हाथ में त्रिशुल लिये नन्दी खड़े थे। दें।नें। दम्पती के मुँह श्रस्त कालीन सूर्य की सुनहरी किरण पड़ने से बहुत सुन्दर मालूम होते थे । नन्दी च्छासपूर्वक निर्निमेष दृष्टि से वह ब्रपूर्व शोभा देख रहे थे । पितृवत्सल पुत्र जिस माव से माता-पिता की, त्रानुरक्त प्रजा जिस भाव से राजा रानी को, और साधक मक्त जिस भाव से श्रपने इष्टदेव श्रीर देवी को देखते हैं उसी माव से नन्दी चुपचाप

पतिसता । 86

सती शहुर को देख रहे थे। कैज़ासपि सती के साथ संसारी जीवें के सुरा-दु:स के सम्बन्ध में बातचीत कर रहे थे। उपवन

बार्तालाप सुन रहे थे। अला होते हुए सूर्य की ओर लच्च करके मद्वादेव ने सरी से कहा-"प्रियतमे ! देखी, जो सूर्य्य इतनी देर प्रपत्नी उञ्चल किरखें से संसार में उजेजा किये हुए थे। उनका सम न वह तेज हैं न वह प्रकाश । कुछ ही देर में वे प्रभाहीन

होकर घटरप हा आरोंगे। संसार में मनुष्य का जीवन भी ऐसाडी श्रनित है। जो बाज हातगीरद से देदीप्यमान हो रहे हैं, दे कल किसी धन्धकार से भरे गढे में हिल जायेंगे, किन्तु मतुष्य ऐसे भान्तिशील धीर प्रमादी होते हैं कि इस चढरवाची जीवन के सुख-

में पशु-पत्ती, पेढ़-पैधे वि:शब्द श्रीर निस्पन्द शेकर उन दोनी का

द्व:स को चिरस्थावी समभते हैं।" सवी ने कहा-"नाव, सूर्व्य का जैसे उदय शक्त होता है क्या मसुष्य का भी वैसे ही होता है ?"

महादेव--''हाँ, ऐसा ही कुछ है। साधारख होग जिसे सन्म-पूर्व कहते हैं. आनी होग चसी की च्यय-धारा फहते हैं। फिन्तु सूर्य के दैनिक उदय-मस्त के साथ उनकी क्योंति का जैसे क्रुळ परिवर्तन सचित नहीं होता वैसे मानव-जीवन का नहीं।

प्रत्येक तर-जन्म के साथ महाध्य उत्तरोत्तर क्षान खाम करके उन्नति ग्रवस्था की प्राप्त हो सकता है।"

"भ्रनेक बन्मसंसिद्धस्त्रते वाति परांगतिम्"

केवल जी लोग वर्महोन हैं वही दिस दिन अधोगति को

प्राप्त होते हैं---

त्रासुरी योनिमापत्रा मूढ़ा जन्मनि जन्मनि । मामप्राप्येव कौन्तेय तता यान्सपमां गतिम् ॥ सती—"ता क्या धर्महीन जीव की गति नहीं होती ? क्या वे दिनों दिन अधोगित को ही प्राप्त होते हैं ?"

महादेव—"नहीं, ऐसा नहीं होता। जींव और ब्रह्म में भेद नहीं है। समस्त पापों का प्रायिश्वत्त होने पर जीव परमगित को प्राप्त होता है, यही प्रकृति का नियम है। कर्म निःशेष होने पर जीव ब्रह्म में जीन हो जाता है। जीव को ह्यमाह्यस कर्म का स्रवश्य भोग करना पढ़ता है।

"प्रवश्यमेव भोक्तव्यं इतं कर्म शुभाशुमम्"।

इस प्रकार दोनों परस्पर वार्तालाप कर रहे थे। ऐसे समय में कुछ दूर पर अखन्त मधुर-वीगा का शब्द सुनाई देने लगा। साथ ही इसके कुछ गाने की भी आवाज आने लगी। यह मीठे सर से गाता हुआ कौन आ रहा है ?

''जय जय शंकर कैलांसपती"

"वाम भाग में सती विराजत श्रति श्रानन्दमती। श्रद्ध विभृति जटा सिर सोहत त्रिभुवननाथ यती॥"

सती को यह खर बहुत दिन का पहचाना था! सुनते ही उसके सारे शरीर में रोमाध्व हो आया। वह गद्गह कण्ठ से बोलो, "यह स्वर और किसका होगा? मेरे चवा महर्षि नारह आ रहे हैं।"

इतने ही में अपनी उज्ज्वल कान्ति और विशद सुसकुराहट से दसी दिशाओं को विकसित करते हुए नारद जी वहां आ पहुँचे। परस्पर यद्याचीम्य धामिवादन धीर ध्रम्यर्थना के प्रश्नात जब तारद स्वस्थ क्षेत्रक्त बैठे वव सवी ने जनसे पूछा—"कासल का क्या समाचार है ? मेरे माता, पिता धीर वहने धादि सव कीम अच्छे से हैं १¹⁷

ं नारद—''समाचार अच्छा है। तुम्हारे माता, पिता धीर बहन ब्यादि सब खोग अञ्चलपूर्वक हैं।''

सती—''मेरे पिता जी ने इतने दिन मेरी कुछ लोज-ल्यर क्यों न छो ?"

नारह—"तुम्हारे थिवा श्राम कल वह काम में हैं। वे एक महायह की भायोजना कर रहे हैं। इस वह में उन्होंने भारत के क्या राजा, क्या रहू, क्या पिण्डल, क्या मूर्ज, क्या वहे, क्या छोटे, सभी को सेवता हैंगे। मालूम होता है, उसी यक सम्यक्षी महासमा-रीह के कारण वे शुन्हारी श्रम न हो सके। ²⁷

सती ने हुन्तस कर पूछा—''क्या आप पिता की झाता से' सुम्मको वस यहाँ में ने नाने के लिए वहाँ आये हैं ?''

भारत--''नहीं, मैं जो यहां झावा हूँ, यह तुम्हारे माता पिता किसी को मालूम नहीं। मैं इस सार्ग से कहीं जा रहा था। यहुत दिनों से तुम्बें न देखा था। इसी से सम्बम् तुमको देखने साया हूँ।''

सवी—''पिवा यह की इवनी बड़ी वैधारी कर रहे हैं, ऐरा-रेशान्तर के लोगों की नेवश भेज भेजकर बुला रहे हैं, इस लोगों की. न इसकी ख़नर दी न नेवश भेजा! इसका नया कारख ?''

ं नारह—"इस वाव का वक्तर मैं क्या हूँ ? तुम्हारे पिता को

मतिश्रम हुआ है । सुना है, इस यह में वे तुमको नेवता न देंगे।"

यह सुन कर सवी को बड़ा श्राप्त्वर्य हुआ। उसने भगस्वर में पूळा—''हम लोगों का अपराध क्या है ?"

नारद—''सुना है, कैलासपिव के व्यवहार से उन्होंने अपने को अपसानित समभा है। उसी अपसान का बदला लेने के लिए वे अपने समस्त बन्धुवान्थनों और कुटुम्बों को नेवता हेंगे, केवल सुमको नहीं।"

सती--''मेरी माँ को यह बात मालूम हैं ?"

नारद—''माल्म है। उसने अपने पित से बहुत अनुरोध किया था, किन्तु उन्होंने पत्नी का अनुरोध न माना। रानी ने मारे सोच के अन-जल लाग दिया है। तुम्हारी चिन्ता से उसे रात को नींह महीं आती। अब इन बातों की आलोचना से कुछ फल नहीं। मुक्ते दूसरा काम है। मैं जाता हूँ। यह कह कर नारह चलो गये।

सती' ने विनयपूर्वक कैंतासपित से कहा—"पिता ध्यापके व्यवहार से ध्रपने की अपमानित समक्त कर कष्ट हैं, इसका अर्थ मेरी समक्त में ज़ळ न ब्राया।"

. कैलासपित ने कहा—''देवी, मैंने उनका अपमान नहीं किया है। किसी को अपमानित करने का मेरा खमाव नहीं है। असल वात यह है कि, कुछ दिन हुए, किसी समा में अन्यान्य देवताओं के साथ मैं भी बैठा था। तुम्हारे पिता प्रजापित जब उस सभा में आये, तब और लोगों ने उनका जिस अकार खागत किया मैं उस प्रकार उनका खागत न कर सका। सुना है, तभी से वे सुफ पर क़ुद्ध हैं फ्रीर सुमको अपमानित करने का उपाय क्षेत्र रहे हैं। तुम्हारे मन में खेद न हो, इस मय से मैंने इतने दिन तुमसे यह बात न कही थी।¹⁷

सवी—"नाथ, मेरी एक प्रार्थना है। श्रापकी श्राहा पाठें ते मैं एक बार कनखल जाठें । पिता को सब बात समभा कर फिर श्रीग्र ही यहाँ चली श्राकेंगी।"

महादेव—"यदि अवसर दूसरा रहता तो जाने में कोई वाधा न थी। किन्तु अभी जाने से वे क्रोधवरा तुम्हारा अपमान करें ते। कोई आरचर्य नहीं।"

सती—''मेरा अपसान ने क्यों करेंने ? मैंने ता उनका कोई अपराध नहीं किया है।"

महादेव—''तुम बड़ी सरजहृदया हो । तुम प्रजापित के समाव से मली भांति परिचित नहीं हो । अपने घमण्ड में चूर होकर ऐसा कोई अञ्चल काम नहीं है जो वे न कर सकें । अब उनके मन में यह घारया हुई है कि मैंने उनका अपसान किया है वह सुयोग पाकर मेरा या मेरे अभाव में तुम्हारा अपसान करने में वे करा भी संकोच न करेंगे । तुम स्वयं इस बात को सोच सकती हो कि जब उन्होंने हम होगों का अपसान करने ही के लिए इस यहा का आरम्म

किया है वन बिना बुखाये इस यह में जाना उचित है या नहीं।'' सवी—''नाय ! सेरी समम्म ही कितनी कि इन वादों का तत्त्व जान सक्टूँगी। वात यह है कि बेटी को बाप के घर जाने सें

निमन्त्रण की क्या ज़रूरत है ? निशेष कर जब देविर्ष नारह कह गये हैं कि मेरी याँ ने मेरे लिए साना पीना छोड़ दिया है। यह सुनकर मी श्रपमान के भय से उनके पास न जाना क्या मेरे लिए उचित होगा. ?"

महादेव—"इस बात का कोई उत्तर नहीं है। जब तुम्हारी इच्छा जाने की है तब जाओ । वहां की अवस्था देख भालकर काम करना । परन्तु मुभे आशङ्का होती है कि इस यक्ष का परिणाम, मेरे, तुम्हारे या प्रजापति, किसी के लिए अच्छा न होगा।"

नन्दी ने महादेव की आज्ञा पाकर वात की वात में सती के कनखला जाने का सब प्रबन्ध ठीक कर दिया । सती ने पिता की घर जाने के लिए कोई नया भूषत्व-वसन धारत न किया। जिस तपस्तिनी मेस से वह कैलास में थी, उसी मेस से वह कनखल गई। उसके कण्ट में स्फटिक की माला, दांख में उद्राच की चूढ़ी, म्रङ्ग में विमृति, खुली हुई भागुरुफलम्बित केशराशि भीर गेरुवा बुख, इससे श्रधिक उसके वेश-विन्यास में श्रीर कुछ न या। कन-खलवासियों में जिन लोगों ने सती की बाल्यावस्था में देखा था, चन लोगों ने नवादित उपा की भाँति उसकी तेजस्तिनी मृति^९ देख कर आश्चर्य भरे भाव से भूमिष्ठ होकर उसको प्रणाम किया। सती किसी से कुछ न कहकर महत्त के भीवर जिस घर में रानी घरती पर पड़ी हुई रो रही थी, एकाएक वहीं जा पहुँची, श्रीर माँ को अलन्त दु:खाकुल देखकर मधुर खर में बोली—"मां, मैं घापको देखने आई हैं।".

संजीवन सन्त्र की माँति वह सुघासिक मधुर खर रानी के कान में प्रविष्ट होते ही वह चैंक उठी और आँख के सामने सती को देख कर बढ़े प्यार से उसे छाती से छगा कर बोली.—"मेरी वेटी ! तुम आ गई ११७ यह कह कर वह बार वार उसका सुँह चूमने और वर्लया लेने लगी । दोनों माँ-वेटियों की आंखों से प्रेमात्र की घारा यह चली ।

सती ने कहा—"माँ, मैं एक वार पिता की देख जाती हूँ।" रानी—"नहीं वेटी, महाराज अभी यहाशाला में हैं। वहाँ

राना--- 'नहा बटा, भहाराज अला चहाराजा न है। 'परा जाने का कुछ काम नहीं।'' सती---''मी, मैंने पिता को बहुत दिन से नहीं देखा, जी जगा

है, एक बार उनका दर्शन कर आती हूँ।" यह कह कर रानी के कोई वात वेत्त्वने के पूर्व ही वह यहा-

यह कह कर रानी के कोई वात वीखने के पूर्व ही वह यह-शाखा की झोर चल दी। राजभवन के सामने ख़ुव लच्चे चीड़े भैदान में यह की छायो-

जना हुई थी। नाना देश-दिशाओं से साबु, संन्यासी श्रीर दर्शकगण वहाँ आये थे। राजा दक्त के जैसे ऐश्वर्य की सीमा न थी वैसे ही उनकी यह-सामग्री का भी अन्त न शा। उपर रेशमी कपड़े का वहुत बड़ा शामियाना खड़ा शा, नीचे यह की वेदी थी। पुरोहित-

गय यहनेदी पर मण्डलाकार चारों छोर वैठे थे। उनके बीच में दच प्रजापित विराजमान थे। पवित्र होम का धुर्मा चारों छोर उड़ रहा था। बार बार आहुति देने से प्रव्यक्ति छाप्रि का उत्ताप लग कर दच का मुँह लाल हो गया है, जिससे ने साचान् भूतिमान श्राप्तिदेव की माँति दिखाई दे रहे हैं। सती को स्रांते देख कर

जितने वहाँ लोग ये सभी ने सम्मानपूर्वक रास्ता छोड़ दिया। सती ने पिता के चरणों के सभीप जाकर साष्टाङ्ग प्रणाम किया। कुछ देर के लिए पुरोहितों के कण्ठ में वेदकन्त्रों ने विशास पाया। हवनकर्ता का द्वाथ धाहुति देने से क्क गया। प्रजापति ने इसका कारण हूँ इने के लिए दृष्टि उठा कर देखा। सती हाथ जोड़े उनके सामने यहावेदी पर खड़ो है। सती को देख कर उनका सुख प्रसन्न हुआ। वे स्तेह मरे मीठे खर से बोले—"सती, हुम भी धाई ?"

किन्तु झुछ ही देर में उनका मान बदल गया। उनकी भी जगर को तन गई। मुँह अस्तकालीन सूर्य की भांति लाल हो गया। उन्होंने कर्करा स्वर में कहा—''सती, तृ यहां क्यों आई? किसने तुभको यहां आने कहा।" पिता के विवाक बाया की भांति इस कठोर घचन ने सती का मर्मच्छेद कर डाला। जन्म से आज तक पिता के मुँह से उसने ऐसा कठोर वाक्य कभी न सुना था। वह आंखों के आंसुओं को रोक कर बोली—''मैंने बहुत दिनों से आपको न देखा था, इसी से आपको देखने आई हूँ।"

सती की इस करुया भरी वायी ते समास्य सभी लोगों के हृदय को द्वित कर दिया। किन्तु वह वायी दच के हृदय को न पिषला सकी। उन्होंने फिर कड़क कर कहा—"तुमको किसने यहाँ आने कहा ? मैंने तो तुम्मे बुलाया नहीं।"

सती—''माता-पिता के दर्शनार्थ आने के हेतु सन्तानों को बुताने की क्या आवस्यकता है ? मेरा तो यह अपना घर है। मैं विना बुताये ही आई हूँ।"

दच-"यह बात प्रजापित की कन्या के मुँह से बाहर होने

योग्य नहीं । विधाता ने जिस निर्कृत के हाथ में तुसको सींप दिया है, यह उसी की पत्नी के मुँह से निकतने योग्य है।"

सर्वो—"पिताजों, श्राप उन्हें निर्श्वेज कह कर क्यों दृषा गाली देते हैं ?"

महीं, पागल हैं ! ब्रानशून्य है !" सतीः—"प्रस्का, वे निर्लब ही ही किंवा बन्मत ही हीं, वे मैरे देवता हैं । आप ध्यर्च वनकी निन्दा न करें । उनकी निन्दा सुनने की घपेचा मेरा मर जाता धच्छा है !"

"दत्त का सारा शरीर क्रोघ से कॉपने लगा। वे कुछ वीलना चाहते ये, परन्तु क्रोधाधिक्य से उनकी खुँह से कोई शब्द न

निकला।"

सती--- 'काप कोघ न करें। चया कीजिए। यदि इस होगों से कोई प्रपराध हो वड़ा है वो कहिए, क्या उस पाप का कोई प्रायरिचत नहीं है 90

रच----"प्रायश्चित्त है। तुम्हारे मत्ते ही से प्रायश्चित होता। मैं जिस दिन सुनूँगा कि तुम मर गई, उस दिन मैं समसूँगा कि उस ध्रमम के साथ मेरा सम्पर्क न रहा। जिसके साथ सम्बन्ध नहीं उसके साथ रागहोष कैसा १" सती—''तो यही ग्राप चाहते हैं ? यही श्रापको श्राज्ञा होती है ? क्या विना मेरी मृत्यु के श्रापका क्रोध शान्त न होगा ?" दच—''नहीं।"

सरी—'' आप धीरज घरें। वहीं होगा। यदि मेरे मरने से आपका क्रोध दूर हो, आपके गैरव की रचा हो और हम सवें के अपराध को आप भूक जायें तो इससे वढ़ कर मेरे लिए मुख की मृत्यु और कब होगी ? मैं आपकी आजा का पालन कहाँगी, किन्सु आप उनकी निन्दा न करें।'

यह कह कर सती यक्क प्रश्न एक श्रीर योगासन लगा कर कैठ गई। उसने उत्तराभिग्रुख हो कर अपने गेरुने बसन से पैर से सिर तक सर्वाङ्ग ढक लिया। सभास्थ सब लोग विस्मित होकर चित्र- वत् इस अपूर्व दृश्य को देखने लगे। सती का क्या उद्देश्य है, किस लिए सर्वाङ्ग को वस्त से आप्टुत करके योगासन लगा कर कैठी है— यह किसी ने न समक्ता। इसलिए किसी ने रोकने की भी चेषा न की। देखते ही देखते सती के शरीर से एक अद्भुत ज्योति निकली। उस ज्योति से होमकुण्ड की ज्वाला निष्प्रम हो गई और वह ज्योति सती के ब्रह्मरन्त्र से निकल कर अनन्त प्रकाश के साथ कुछ काल में आकाश में छिप गई। दृटी हुई देन-मूर्ति की माँति सती का स्यूल शरीर चल मर में घरती पर गिर पढ़ा, फिर उठा नहीं।"

दच के यज्ञ का परियास क्या हुआ, इसका उल्लेख करने की कोई आवश्यकता नहीं। प्रतीकार का सामर्थ्य रखते हुए पुत्रगण जिस बेददीं के साथ अपने साल्घाती को मार कर हृदय का शोक सिटाते हैं, कैलासपति के दूतगर्यों ने उसी प्रकार बड़ी

परिव्रता । २६

निष्ठरता के साथ सहायकसहित दच को मार कर सती की मृत्यु का बदला लिया। जहाँ दत्त का सेवस्पर्शी विशाल राजभवन था

वहाँ ध्रय उसका चिद्ध मात्र नहीं है । जहाँ सती ने योगविधि से

प्राग्रत्याग किया था वहाँ अब एक छोटा सा ऋण्ड मात्र वच रहा है।

का कीर्तन वर वर होता रहेगा।

कनखल राजधानी की न अब वह पूर्व की शोशा है न वह सम्पत्ति है। वहाँ के रहने वालों में न अब वह पराक्रम है न वह उत्साह है, सभी श्रीहीन दीन प्रवस्था में पड़े हैं । सदी से प्रपमानरूपी पाप के फल से वह अमरावती को लजाने वाला कनकल इस समय रमशान सा हो रहा है । क्षेत्रत गङ्गा जी बाद भी पहले की वरह कलकल शब्द करवी हुई उसके संनिकट प्रवादित होकर इस पुरानी कहानी का लोगों में प्रचार कर रही है। जब तक इस भारत-भूमि में गङ्गा की धारा रहेगी तब तक सती के पवित्र चरित्र

दूसरा आख्यान

सुनीति

केंक्षे*र्भा*रद ऋत में जिसने कभी यसना के कळल जल

की शोभा देखी होगी वही जान सकता है कि बसना के प्रवाह में कितनी रसखीयता भरी है। उस यसुना के किनारे एक उपवन सुरोभित था । सारा उपवन बेला, चमेलो, गुलाब, जुडी धीर मीलसरी आदि भाँवि भाँवि के फुलों से महँक रहा था । उसी . उपवन के भीतर राजा उत्तानपाद का राजभवन था । उत्तानपाद स्वायंभव मन् के पत्र थे. इसलिए उनके ऐश्वर्य और प्रताप की बरा-बरी करने वाला उस समय कोई न था । उनके दे। रानियाँ थीं। पहली का नाम सुनीति या और दूसरी का सुरुचि । दोनी रहन रूप और गुण में अनुपम थां । जैसे लच्मी और सरखती से वैक्कण्ठ भवन की शोभा है। वैसे ही इन दोनों रानियों के द्वारा उत्तानपाद के अन्तःपर की शोभा थी।

के धन्तः पुर की शोभा थी।

एक दिन महल के मीतर एक छोटी सी कोठरी में रानी
सुरुचि प्रकेली मूमि पर पड़ी थीं। उसके बाल खुले थे।
शरीर में कोई गहना नहीं। एक फटा पुराना मैला कपड़ा
पहने थी। रोते रोते उसकी होनी थ्रांके सुल गई थीं थीर
स्नाल हो गई थीं। सांस खुल तेज़ी के साथ चल रही थी।

दासीगण कोठरी के द्वार पर काड़ी होकर सम-दृष्टि से उसकी थ्रेगर ताक रही याँ। किन्तु उससे कुछ पूछने का उन्हें साहस नहीं होता था। क्रमशः सौकर महत्त्व में भ्राये। राजा उत्तानपाद राजकाज से छुट्टी पाकर मीतर महत्त्व में भ्राये। किन्तु भ्राज भ्रीर दिन की साँति प्रियतमा सुरुचि को भ्रायती कोठरी में न देख कर वे उसे खोजते खोजते उसी कोठरी के भीतर जा पहुँचे। पन्नो की उस भ्रावशा में देख कर उन्हें यहा भ्राव्ये हुछा। उन्होंने सुरुचि का भ्रावशा करते हुए यह वहा प्राव्ये हुछा। उन्होंने सुरुचि का भ्रावशा करते हुए यह वहां क्यों पड़ी हो १११

रानी ने कुछ उत्तर न दिया। उसने अपने श्रुँह को आँवल धे डक लिया।

राजा ने रानी के मुँह पर से कपड़ा इटा कर देखा, रोते रीते उसकी आँखें सूज गई हैं और बन्धक से मुखयण्डल ने रक्त कमल की ग्रोमा धारण की है। राजा का हृदय दुःख से मर गया। उन्होंने फिर पूछा—"व्यारी! कही, दुम्हें क्या हुआ है ? दुम्हारे नैश्वर से कोई अनिष्ट संवाद तो नहीं आया है ?"

तथापि रानी कुछ न बेली। तव राजा उसकी पास बैठ कर उसका हाथ पकड़ कर प्रणय-वाक्यों से उसको इस प्रकार सममाने लगे—"प्यारी तुम ऐसा मलिन बेप किस लिए धारण किये हुए हो ? यदि किसी ने तुम्हारा अपमान किया है तो उसका उचित दण्ड देने के लिए मैं प्रस्तुत हूँ। यदि तुम्हारे मन में किसी तरह का अमिलाप हो तो कहने के साथ उसे पूर्ण हुआ सममो।"

ं इस तरह राजा ने अनेक अनुतय वाक्य कहे पर रानी ने

कर रोने लगी। आखिर राजा ने कहा-"प्रिये! मैं दिन भर के काम से यक कर तुम्हारे पास श्राया हूँ। मेरा श्रङ्ग श्रङ्ग दुखता है। मैं भूख प्यास से ज्याकुल हूँ। ध्रगर तुम्हारी नाराज़गी

का कोई सबब हो तो पीछे मान ठानना। श्रमी सुकी क्षछ खिलाग्रे। पिलाग्रे। 1" ग्रबंकी वार सुरुचि वठ वैठी। उसका इशारा पाकर चतुर-दासी राजा के मेाजनयोग्य सव सामग्री हो ग्राई। सुरुचि ने घपने

ष्ट्राथ से चैका लगा कर ग्रासन पानी रख दिया। राजा सन्ध्या-बन्दन करके मोजन करने बैठे। रानी उनके पास बैठ कर पंखा भक्तने लगी। भोजन करके हाथ मुँह थी राजा ने रानी की अपने पास विठा स्तेहमरी दृष्टि से उसकी ग्रोर देखकर कहा-"प्यारी,

तुन्हें मेरी सीगन्द है, क्या हुआ है कहा ते।" सुरुचि-"महाराज, मैं ब्राप की एक दासी हूँ। दासी का इतना भादर क्यों १"

राजा—''तुम्हारे मन में क्या है, यह मैं नहीं समभ्त सकता । यदि तुम दासी हो, तो मेरी पत्नी कीन है ?"

सुरुचि-- "पत्नी है सुनीति । यदि श्राप सुफ को पत्नी सममते तो मुक्ते दु:ख क्या था ? यदि श्राप मुक्ते दासी ही बना कर रखना चाहते हैं तो श्रापने सुकसे व्याह क्यों किया ?"

राजा "तुम्हारा क्या सवलव है, मैं नहीं समका। तुम

मुक्तसे सब बात खोल कर कहे। 17 सुरुचि-"श्राप सुना ही चाहते हैं तो मैं कहती हूँ, सुनिए।

पतिञ्जता । .30

किन्तु अपने अपराध की साफ़ी मैं पहले ही आपसे माँग लेती हूँ । आपके कोई पुत्र न था, इस कारण पुत्र की कामना से श्रापने मेरे पिता से मुमको गाँग लिया घा। आपको धर्मात्मा ध्रीर सत्य-वादी जान कर पिता ने सीत रहते भी मुस्तकी क्राप के हाथ में समर्पण कर दिया था। वे तो जानते ये कि आप मुभको धर्मपती

भाव से प्रहत्त करेंगे। किन्तु--- " सुरुचि की बात पूरी दोने के पूर्व ही उत्तानपाद बोले---"प्यारी ! क्या मैंते तुम दोनों के बीच कुछ विभेद-शुद्धि दिख-

खाई है ?? सुरुचि-"इस राजमबन का सब से बत्तम कोठा जो सदा

यमुना नदी के शीवल जल बाबु का सर्श करवा है, वह छापने किसको दे रक्खा है ?"

जत्तानपाद--"तुम्हारे व्याह होने के पूर्व दी 'से सुनीति उस कोटे में रहती है, तुम कही तो उससे सैराना सुन्दर रमाधीय मोठा तुम्हारे लिए वनवा दूँ।³³

सरुचि-"भाषके केशागार में जी सब से उत्तम मेहरी-माला

है, वह धापने किसको दी है ?" उत्तानपाह--"प्यारी ! मुक्ते क्यों व्यर्ध दोप देती हो ? वह माला दुर्लभ है, इसमें सन्देह नहीं। मेरे पूर्वजी ने बहुत दिनी तक वरुणदेव की ब्राराधना करके पुरस्कार स्वरूप यह माला उनसे

पाई घी। मेरे व्याह होने के पीछे पिताजी ने वह माला सुनीति को दी। मैंने नहीं दी है। मैंने तुम्हारे लिए भी एक वैसे हार की तलाश की थी, किन्तु समुद्र के दिवस बटवर्ती सीदागरों ने कहा कि वैसे मोती अब नहीं मिलते । इसी से मैं अब तक कृतकार्य न हो सका।³³

सुकिच ने ज्यङ्ग करके कहा—''इससे बढ़कर मेरा सीमाग्य और क्या होगा। किन्तु इस प्रकार कपट-प्रेम दिखलाने में क्या फल १ भूषणवस्त्र की बात जाने दीजिए। श्रिप्रदोत्र के समय केवल सुनीति ही क्यों आपके साथ बैठती है १ क्या मैं आपकी सहधर्मिणी नहीं हूँ १"

उत्तानपाद—''तुम भूलती हो। मैंने को अप्रिहोत्र व्रत धारण किया है वह दो एक दिन के लिए नहीं, जीवन भर के लिए किया है। तुम अभी अल्पवय की हो, तुम्हारा शरीर अल्पन्त कोमल है। उपवास का कर न सह सकोगी, इसीलिए सुनीति ही अपने ऊपर कर लेती है। तुमको कर देना नहीं चाहती। विशेषत:—

सुंरुचि---"विशेषतः क्या. १"

राजा—''यही कि वहुत पत्नियों के रहते धर्मांचरण में बड़ी पत्नी ही का पहला ग्राधिकार है।''

सुरुचि—''महाराज! अब आपको अधिक कहना न होगा ।
मैं समम गई। आपको राजमवन में मेरे लिए जगह नहीं है।
अन्त:पुर का सब से बड़ा कोठा सुनीित का, कोशागार का सर्वोत्तम
राज सुनीित का, धर्म-कर्म में प्रथम अधिकार सुनीित का। केवल
कुतिया की मांति आपको अज्ञ से पेट पालने का मेरा अधिकार
है। आप अपनी धर्मपत्नी को लेकर रहें, मैं जाती हूँ।" यह कह
कर सुन्निच चट खड़ी हुई।

राजा ने बलपूर्वक उसका हाथ पकड़ कर फिर अपने पास

32 पतिव्रता । विठाया और वहे प्वार से उसकी पीठ पर हाथ रखकर कहा-प्यारी ! मैं सच कहता हूँ । तुम मेरी आँखें की पुतली श्रीर घर की शोभा है।"--राजा कुछ श्रीर कहना चाहते थे, परन्तु सुरुचि

ने बीच ही में रोक कर कहा—''शोभा की बात आप सब कहते हैं, इसपर मैं ज़रा भी श्रविश्वास नहीं करती । श्रापने सुभक्ती श्रव्छे भूपणवर्कों से सजाकर मिट्टी की मृति वनाकर श्रपने घर की शोभा बढ़ाने के लिए रख छोड़ा है। विकार है खीजना की ! विकार है पुरुष की रूपस्प्रहा की !"

उत्तानपाद-- "तुम व्यर्थ क्यों खेद करती हो ?" में धमी सुनीति को पास दावर भेज कर बुखावा हूँ। में उसके हृदय की भर्ताभाति जानता हूँ। वह दुम पर जितना स्नेह रखती है, उससे चिंद उसे किसी तरह मालूम होगा कि वही तुम्हारे सुखं का काँटा हो रही है, वही दु:सा का कारबा है, तो अवश्य वह तुम्हारे हु:स

का परिशोध करेगी।" राजा ने एक दासी से कहा—''वड़ी रानी से जाकर कहा कि वह एक बार यहाँ श्राकर मुक्तसे भेट करे।"

दासी सुनीति को अुलाने गईं। वन सुरूचि ग्राप ही न्नाप ईर्जा भरे बीमे सर में बेालगे लगी--''वही रानी ! बड़ी रानी ! सब कोई कहते हैं बढ़ी रानी ! वह बढ़ी रानी श्रीर मैं छोटी रानी ! वह बड़ी काहे से ? वह राजा की वेटी है ते। क्या में वहीं हूँ ? वह राजा को व्याही है तो क्या मैं उनको व्याही नहीं हूँ ? वह सुन्दरी है, क्या में कुरूपा हूँ ? ते। वह बड़ी में छोटी क्योंकर ? यदि में मथुरा के महाराज की राजकुमारी. हूँगी तो दिखा हूँगी कि वड़ी रानी का

नाम मिटवा है वा नहीं । सब लीग आंख पसार कर देखेंगे कि एक राजा ख़ीर एक रानी के सिवा दूसरा कोई व रहेगा। छोटी हूँ वा बड़ो, में ही एक रहूँगी।¹⁷

इसी समय राजा की आड़ा सुनकर सुनीवि वहाँ माई। वह इस ही देर पहले मगनाम की सम्जा-मगती देखकर माई हो । इसलिए यह किस पेश में इर्फेन करने की गई वी उसी वेश में राजा के पास माई। वह रोजारी साझे पहते वी, स्वलाट में जन्दन हागाये थी, कपठ में मगनाम के प्रताद सरक्ष पूल की साखा थी, सुन्न की रोगमा किले हुए शुकाब के पूल की सी बी, चेहरे पर शानिन हाई थी, देखने से मातूस होता था जैसे वह साचान कोई देवों की मुनि हो । युवानस्था का चपल सैनन्य दूर होकर प्रीड़ मजसा की गान्धीर शोमा स्वस्त सर्वाहु में विकासित हो रही थी। च्यानपाद ने एक बार सुनीवि के कोई और किस सर्व सर्व सरखा के प्राथार-सरक्ष सुन्वपटक की श्रीर देखा। उनके नवनों में बांसू सर माये। दे सुनीवि से कोठरों के मीटर प्रनेश करते ही देशा, सुविष इयर सुनीवि ने कोठरों के मीटर प्रनेश करते ही देशा, सुविष

इयर हुताबि न फारण के साल प्रकार करत हैं। क्या है क्या हुताब के बात जुले हैं, गरीर में एक भी आप्र्यक नहीं, मैंता कपड़ा पहिरे हैं। ड्ये देखकर हुनांवि को कहा आप्रये हुआ। वह विलस्त म कर भर हुआ के पास जा कैंग्री और ज्यक्त विलसे हुए बाजों को समेट कर बेली-—"वहन, वह क्या ? तुम्बारा आल ऐसा भेस क्यों ? देखती हूँ, न तुम्बारे बाल बेंग्रे हैं, न सिर में पिन्दूर है, गरीर में पूल सिट्टी लगी हैं। रोते रोते हुम्बारो दोनों आले सुन गई हैं। क्या हुआ है ? मसुरा से कोई आविष्ट संबाद तो नहीं आया है !?

ď١

मुक्ति ने सुनीति के हाथें। से श्रपनी विस्तुलित केशराशि हुड़ा कर कर्कश खर में कहा—''सुनीति ! तुम मुक्ते न हुआे।''

सुनीति श्राधर्य के साथ वेग्ही—''क्यों वहन ! दुम ती कभी मेरा नाम न होती थीं, बरावर जीजी कहती थीं। प्राज

क्षमा मरा नाम न स्रवा था, बराबर जाजा कहता था। अ दुन्हें क्या हुआ है ? क्या मुक्त पर नाराज़ तो नहीं हो ?"

. सुरुषि के उत्तर देने के पूर्व ही राजा उत्तानपाद ने कहा-"सुरुषि माज सुन्हारे भीर मेरे उत्पर बहुत रुष्ट हैं। उसकी यह धारखा है कि मैं उसकी अपेचा सुमको अधिक चाहता हूँ। वह कहती है कि मैंने ही सुमको यह सवैश्विम मोती-माला दी है।"

सुनीति—"यही वात है ! इसके लिए इतना मान क्यों ? यह लो वहन ! जब हुम यहां न आई याँ, तभी स्वर्गीय महाराज ने यह हार सुम्मको दिया था । इस हार में जैसा श्रविकार मेरा है वैसा ही तुम्हारा मी । ग्राज से यह तुम्हारा हुआ ।" यह कह कर सुनीति ने सुरन्त अपने कण्ठ से माला निकाल कर सुनिय को पहना दी ! हीएक को प्रकारा में हार अपनी अपूर्व चमक चारों श्रीर फेलाने लगा, किन्तु सुनिय ने मट वसे गले से निकाल दूर फेंक दिया; श्रीर सखे स्वर में बोली—"सुनीति, में मधुराधीश की राजकुमारी हूँ ! गिलमीगन नहीं हूँ जो तुम्हारा दान लूँगी । सुम श्रवनी माला अपने पास रहने दे। ।"

राजा श्रीर क्षुनीति दोनों ही सुरुचि का व्यवहार देख कर श्रवाक हो रहे। कुछ देर के बाद राजा ने कहा—"क्या करने से इन्हें सन्तेष होगा ? किस तरह तुम्हारा कोष शान्त होगा ? कही, हम दोनों वही करें।" पुरुषि ने कहा—''महाराज ! सुनिए, इस महल में हम दोनों अब एक साथ नहीं रह सकतों। में जितने दिन वालिका थी अपना भला नुरा कुछ न जानती थी, ज्वते दिन सुनीति ने जेा कुछ मुभी दिया में उसी में तम रही। किन्तु मैंने अब अपने अधि-कार को जाना है, जो मेरा प्राप्य है वह सुभी मिछना चाहिए।''

सुनीति—"'यह वो अच्छी बाव है। इसके लिए तुम इतनी असन्तुष्ट क्यों हो ? जो तुम्हारा प्राप्य है वह तो तुमको मिलेहीगा, इसके अतिरिक्त मेरी निज की जो वस्तु है वह सी मैं तुमको दे सकती हूँ।"

राजा ने ठण्डी साँस भरी। मानो उनके हृदय का दोम्स कुछ इलका हुआ। उन्होंने कहा—''सुरुचि! देखी, बढ़ी रानी तुमकी कितना प्यार करती है। तुमको उस पर रोप न करना चाहिए।''

सुद्दिर—''आप की का हृदय क्या जानें। की और सब बस्तुओं का भाग दे सकती हैं किन्तु अपनी इच्छा से वह कभी स्वाभी के प्रेम का भाग नहीं दे सकती। वका, अलङ्कार और सारी सम्पत्ति पर सुनीति ही का अधिकार रहे, मैं केवल अपने सामी पर एकाधिकार चाहती हूँ।''

कुछ देर के लिए सुनीति के चेहरे पर कालापन छा गया। किन्तु उसने चित्त के नेग को रोक कर अपने खामानिक मधुर खर में कहा—''वहन, सुम्हारे आने के पूर्व मैंने वहुत दिनों तक एका-किनी होकर खामी की सेवा की हैं। सुम भी तो उनकी धर्मपत्नी हो, हसलिए मैंने जो सुख उनसे पाया है वह सुर्ख पाने की सुम वर्ध भी अधिकारियों हो । अब तुम अकोली चनकी सेवा करो । मैं तुम सोनों को सुखी देख कर सुखी हूँगी।"

सुखिय ने सुनीति की बाव का कुछ बचर न देकर राजा से कहा—"अहाराज, मैं आपसे सच कहती हूँ। इस महछ में अब इस दोनों का रहना कहारी नहीं हो सकता। आप चिकत न

पवित्रवा १

हों। में किस जिए यह कह रही हूँ सो सुनिए। आपकी पहली स्त्री में जब पुत्रोरपिं ज हुई वह आप ने मेरे पिता से सुफ्ने मॉग कर मेरे साथ व्याह किया था। उनका दैरिहन (नाती) भविष्यत में राज्याधिकारी होगा, इसी आशा से उन्होंने आपके हाथ सुक्ते सीप दिया था। किन्तु जब बिद भाष हम दोनों की साथ समान भाष से संसार-क्ष्में का निवहि क्षरेंगे हो मेरे गर्म से जो पुत्र उत्सन्न

होगा वसे राज्य मिछने को काया बहुत ही कम रहेगी। वस विन महर्षि बीधायन ने हम दोनों को देखकर ''गुवा पुत्रवसी अवकास'' कह कर ब्राग्नीवीय दिण या। महर्षि का बाक्य कभी विफल नहीं हो सकता। इसिलिए सेरा पुत्र पहले उत्पन्न हो या पीछे। सुनीति की पुत्र होने से कितने ही प्रजागक वही हानी का पुत्र जानकर स्वयस्य ही उसका पत्र लेंगे। उस बावत्या में मेरा पेटा निक्कण्टक

भवरव हा क्या ना क्या । क्या अवस्था न नहा वटा । ज्या क्या हा स्वा हा स्वा सकेगा।"

सुनीवि—"वहन, विद यही तुन्हारे उद्देश का कारण हो ते।
सुम इसके लिए चिन्ता न करो। यदि सगवान मेरे मेरा होंगे ते।
सुम स्वाय जानो, मेरा पुत्र कसी राज्य का लोग न करेगा। जी
पर राज्यर से भी मेंस्स हैं की उसे नहीं वर प्राप्त सरते सी

शिसा दूँगी।"

सुरुचि---''राजपद से भी श्रेष्ठ पद ! तुम उसे क्या शिचा दोगी ?''

सुनीति—''उसे तुम न समफ सकोगी।'' यह बात सुरुचि के मर्म में जा लगी। वह चुटीली नागिन की भाँति कोघ से गरज कर बोली—''सुनीति! तुम सुनो, महाराज! आप भी सुन, पुत्र ही के लिए पत्नी प्रयोजनीय है। लिखा भी है—''

''पुत्रप्रयोजना भार्यो"

किन्तु सुनीति के द्वारा जब आपका वह प्रयोजन सिद्ध न हुआ तब आपने मेरे साथ व्याह किया। इसिलए आप के महल में दो कियों के रहने की आवश्यकता नहीं। चाहे आप सुमको विदा करके सुनीति को लेकर रहें, चाहे उसे विदा करके मेरा जो हक है वह सुमको दें।

सुनीति की आँखों में आँस् अर आये। उसने करुया भरे खर में कहा—''वहन, क्यों ऐसी बात बोलती हो ? आओ, हम तुम दोनों मिल कर खामी की सेवा करके जीवन सार्थक करें। मैं राज्य, धन, सम्पत्ति आदि कुछ नहीं चाहती। दिन में एक बार पति के चरण की पूजा करूँगी, यही एकमात्र मेरी बासना है।"

सुरुचि—"यह न होगा। वसन्त-काल में नवपल्लव होने के पूर्व ही पुराने पत्तों को स्थानच्युत होना पड़ता है। इस महल में तुम रहोगी हो मैं न रहूँगी।"

सुनीति राजा की क्रोर देख कर बोली—"महाराज! क्या ग्रापकी भी यही राय होती हैं ?"

राजा के सर्वाङ्ग में माना सैकड़ों विच्छ, एक साथ डंक मार

वतिव्यता (रहे हैं। इन्होंने सुरुषि की ब्रोर कातरहिए से देखा, उसकी

ग्रांख से मानो भ्राम की चिनगारियों सह रही थीं। ने कलप **पर सुनीति से वेतले—''व्यारी**़ी में क्या कहूँ ? जिसमें मेरी प्राध-

रचा हो से करो।"

सुनीति राजा के सन का चाब समक गई। वह हाब नेाड़ राला की प्रशास करके उस कोठरी से वाहर हो गई। इसने सट स्रपने सङ्कृ का मृष्ण् ज्वार कर बचनी एक विश्वासपात्री रासी को दिया धीर आप अकेती चुपचाप उस अँवेरी रात में व सालूम

कियर चल ही। कुल ही देर वाद सहस्र के भीतर कोलाहरा सम्बा कि बढ़ी रानी कहाँ गई उसका परा नहीं । सबेरे एक पहरे-दार ने आकर सूचना ही कि जिस गुप्त द्वार से सहत की खियाँ यमुनामें सान करने जाती हैं, वह द्वार रात की खुड़ा था। यमुना नहीं के फिलारे सहावर से ऋड्वित पैर का चिह्न प्राव तक

वर्तमान है। यह सुनकर पुरवासियों ने अनुमान किया, वड़ी रानी विपाद से बसुनाजल में हुवकर मर गई । इस शोकसंबाद वे राजा को ममीन्तक कर दिया। वै सुनीति के वियोग से बहुत हुसी तुए। परन्तु जेल ही दिनों में राजा से शोकाशु से साथ साथ सुनीति का नाम भी हुप्त हो चला । यंगुना के किनारे उत्तर सरफ एक धना बङ्गत या , जी वहुद

हुर तक फैला हुआ था। उस जङ्गल के भीतर महर्षि अति का पवित्र प्राप्तम था। वहाँ कितने ही तपस्ती ऋषि सपत्नीक निवास

करते थे। वहाँ हिंसान्त्रेप का नाम न मा, मोग-विलास का चिह मात्र न था। सब लीग परसंस् हिल्सीमल कर वह धानन्द से

समय विताते थे। ग्राश्रम के पास ही एक फोंपड़ा था। देखने से वह श्रीर कुटीरों की अपेचा नया मालूम होता था। उसके चारों तरफ़ तुलसी के बृच लगे थे। एक वपस्तिनी अक्रेली उस कुटिया में रहती थी। स्वरूप और व्यवहार में अन्यान्य तपस्विनियों से उसकी कुछ विभिन्नता न थी। उसका शरीर तपाये हुए सोने की भाति सुन्दर था। सभी अङ्ग सुदौल थे। उसके चेहरे पर एक ऐसा प्रभावशाली शान्त्रभाव छाचा वा जिसे देखने से उसके सामने सिर नवाने की इच्छा होती थी। वह गेरुवा कपड़ा पहने थी। गले में तुलसी की माला श्रीर सिर में गोपीचन्दन का तिलक शोभा दे रहा था। श्रधिक समय वह ध्यान में निमन्न रहती थी। कभी कभी कुटी से बाहर हो कर वह पेड़ के गिरे क्त्रे और कल फूल संप्रह कर ले आती थी। वह अत्यन्त दयावती थी। आश्रम में जब कसी कोई वीमार होता तब वही उसकी सेवा करती श्रीर शोकार्त की सान्त्वना देती थी। ऋषिगण घेांसले से गिरे हुए पची के बच्चे श्रीर माराहीन मृगद्वीने के पालन का भार उसी के हाथ सींपते थे। उसकी क्रटी में सदा हरिनाम का कीर्वन होता था। जब वह भगवान का गुण गाते गाते यक जाती थी तब उसके पालित श्चकसारिकागम् "हरे कृष्ण, हरे कृष्ण" उचारण कर उस स्थान को पवित्र करते थे। उसके ऊपर आश्रम-वासियों की वडी भक्ति थो । महर्षि ने उसका नाम आश्रमतंत्र्यी रख दिया था । उसी नाम से वह सबों में परिचित थी। तपोवन में किसी का विशेष परिचय पूछना मना था, इससे कोई कमी उसका परिचय न पूछता था; केवल अत्रि मुनि उसका पूरा परिचय जानते थे।

एक दिन अप्रिहोत्र करके अति सुनि आश्रमल्हमी की कुटी में श्राये । उनकी आते देख आश्रमल्हमी ने मिक्तपूर्वक उनके पैर पखार वैठने की श्रासन दिया । पीछे उन्हें साप्टाङ्ग प्रखाम कर वह अपने श्रासन पर जा वैठी । कुशल-प्रश्न पूछने के श्रनन्तर सुनि ने कहा—'चेटी ! क्या में तुन्हारा सुँह कभी प्रसम न देखूँगा ? तुन्हें जब देखता हूँ तमी तुमको उदास पाता हूँ । तुन्हारो , आहोतो में श्रांसू भरे ही रहते हैं । वेटी ! तुम इतना क्यों रीती हो ?"

आश्रमलक्सी—''गुरुदेव ! मैं न रोजँगी तो कीन रोबेगा ? त रोने से मेरे पाप का प्राथक्षित न होगा।''

श्रित्र—"मैंने कई बार तुमसे कहा है, तुम निष्पापा हो । तुम . श्रपने को क्यों पापिनी समभती हो १ धर्म का श्रीभमान जैसे निन्ध है वैसे ही श्रास्मापमान भी निन्दित है ।"

ध्राश्रमलक्ती—''यदि में निष्पापा होती तो इतना मनस्ताप क्यों होता ?''

ष्रित्र—''बेटी ! मनसाप सर्वत्र पाप ही का सूचक नहीं होता । स्थलियोप से कभी कभी उसका फल उलटा भी होता है । देखो, सूर्यदेव प्रखर उत्ताप से पृथ्वी को जलावे हैं, तो क्या यह पृथ्वी की पापप्रान्ति के लिए ? नहीं, उसको फलप्रसिवनी करने ही के लिए । मगवान जो कभी कभी हम लोगों को दुःख से दग्ध करते हैं, वह केवल हम लोगों को तुःख से दग्ध करते हैं, वह केवल हम लोगों को दण्ड देने ही के लिए नहीं, हम लोगों के द्वारा कोई विशेष कार्यसाधन के लिए भी । सुम्मे पूरा विश्वास हैं कि तुम्हारा यह छोग तुम्हारे मङ्गल के लिए हैं । स्वामी से अलग होकर इतने दिन तुम जगरस्वामी की जैसी मंक्ति कर सकी हो,

इसके पूर्व कभी न कर सकी होगी। आंसुओं के अविरत प्रवाह से तुम्हारी मिलनता श्योई जाकर तुम्हारा खच्छ हृदय अव जगरपित परमेश्वर के विहार करने योग्य हो गया। तुम्हारा छेश संसार को मङ्गलप्रद होगा। में अपनी दिव्य दृष्टि से देख रहा हूँ, तुम्हारे गर्भ से एक ऐसा महात्मा जन्म लेगा जो संसार में अफन्वू नामिण के नाम से ख्यात होगा और जो अप्रुव है, उसे छोड़ कर ध्रुव का प्रहण करेगा। ।"

ध्राश्रमलाक्त्मी—''ध्रापका वाक्य कमी विपला न होगा। किन्तु कर्हा में, कर्हा सेरे प्रभु १ क्या ध्रव उनके चरणों का दर्शन सुसे आप्त होगा ?''

श्रित्र—''बेटी, होगा, अवश्य होगा। विधाता के चरित्र की . कीन जान सकता है ? वह सम्भव की असम्भव श्रीर असम्भव की सम्भव कर दिखाता है। समय अधिक हुआ। मैं अब जाता हूँ।"

इस प्रकार ब्याश्रमलक्ष्मी की समक्ता बुक्ता कर धीर उसे बार्शीर्वाद देकर ब्यत्रि मुनि बपने ब्याश्रम की चले गये।

क्रमशः स्र्यं मध्य-आकाशवर्ती हुए। दिन डल चला। सांक हुई। अन्धकार ने धीरे धीरे वनसूमि पर अपना अधिकार जमाया। सन्ध्या होने के साथ साथ आकाश में काली घटा घिर आई। वहे वेग से हवा वहने लगी। क्रमशः हवा ने आँधी का रूप धारख किया। बढ़े बढ़े पेढ़ जढ़ से उसल् कर तूर जा गिरे। जङ्गली जान-वर मयमीत होकर चीरकार करते हुए इघर उघर दैखने लगे। देखते ही देखते वनसूमि ने मयुद्धर रूप धारख कर लिया। पत्तों की खड़खड़ाहट और पेड़ों के परस्पर संघर्षण से अखन्त निकट शब्द द्वाने लगा। कुछ दी देर वाद मूसल्यार पानी वरसने लगा। किसका सामध्ये था जो उस मज़ी में वादर ठंदर सके ? ष्राध्यमवासियों ने अपनो अपनी कुटी में प्रवेश किया और मज़ी वन्द होने की वाट देखने लगे। पहर से उपर हो गया तो भी मज़ी वन्द न हुई। आश्रमलक्सी द्वार बन्द करके अपनी कुटी में वैठी थी। प्रवल वायु के भोके से एक एक बार उसका वर हिल जाता था, साथ ही उसका हृदय कॉप उठता था। इसी समय वाहर से कोई उसके द्वार में धका मार कर बेाला—"भीतर कीन है ? प्राख जा रहा है, जस्दी द्वार खेाली।"

श्राश्रमलुक्सी की प्रथम वार श्रम हुआ। उसने सममा, वायु की समसनाहट ही आर्तनाद का रूप धारण कर कान में प्रविष्ट हुई है। किन्सु वही शब्द स्पष्ट रूप से जब दी दीन वार उसने कानों में पढ़ा तब उसने भट पट द्वार खेल दिया। दीपक का प्रकारा एकाएक दोनों के मुँह पर पढ़ा। देलों परस्पर एक दूसरे की देख कर चैंक उठे।

भ्रागन्तुक ने कहा—''श्रय्ँ ! वड़ी रानी ?'' भ्राश्रमतत्त्वमी—''श्राप सहाराज !''

दूसरी वात वोलने के पूर्व ही दोनों मूर्छित हो भूमि पर गिर पड़े। क्या यह भी कहना होगा कि यह आश्रमलक्त्मी पतिप्रायाा सुनीति थी श्रीर यह आगन्तुक राजा उत्तानपाद थे ? सुनीति राजभवन साग कर यसुना के निकटवर्जी जङ्गल के भीतर प्रवेश कर दैवयोग से श्रति सुनि के आश्रमा में श्रा पहुँची । सुनि ने उसका परिचय पाकर श्रीर उसकी सुशीलता से सुग्ध होकर वेटी की माँति उसे प्यार कर श्रपने आश्रमा में रहने की जगह दी। वहाँ सुनि

ग्रीर मुनिपित्नियों के सङ्घ रहने ग्रीर उनके साथ बरावर धर्म-विष-यक वार्तालाप करने में सुनीति का समय बड़े सुख से व्यतीत होता था। जनसमाज में रह कर जी ध्यान श्रीर घारणा दु:साध्य होती है, वह उस शान्त तपावन में सुनीति के लिए सुखसाध्य पुई। जैसे खेत सूर्य के उत्ताप से पहले दग्ध होता है, पीछे हल से जाता है, पीछे वर्षा के पानी से ठंडा होकर अन्न उपजाता है, उसी तरह सुनीति सीत के दुर्व्यवहार से पहले दग्ध होकर पति के उपेचासाव से विदीर्ग-हृदया हुई, पीछे अत्रि मुनि के वात्सल्य श्रीर सदुपदेश से ठंडी होकर ध्रुव के सहरा हरिअक्त पुत्र उत्पन्न करने की अधिका-रिया हुई। दैवयोग से उसे इसी कुटी में पतिपदसेवा का सुयोग मिला। राजा उत्तानपाद आखेट करने आये थे। वे मही में रास्ता भूत कर भटकते भटकते सुनीति की कुटी में उपस्थित हुए। ध्रत्रि-मुनि ने यथार्थ ही कहा था कि "विधाता के चरित्र की कीन जान सकता है। वह ग्रसम्भव की सम्भव कर देता है।"

मन्ही बन्द होने के साथ साथ आश्रमवासियों ने जाना कि आश्रमकरमी की कुटो में एक अतिथि श्राया है। सुन कर वे सब अतिथि के उपयुक्त ध्वादर-सरकार की आयोजना करने लगे। इस अतिथि के साथ आश्रमकरमी का क्या सम्बन्ध है, यह बात थोड़ी ही देर में सबको विदित हो गई। यह ग्रम संवाद पाकर मुनि-पित्रयों के आनन्द की सीमा न रही। वे सब अपने अपने घर से खाने पीने की उत्तमोत्तम वस्तु लेकर आश्रमकरमी के घर उपस्थित हुई। कोई मक्खन, कोई दही, कोई मधु, कोई मधुर फल मूल लाई। कोई मुनिचत फूल और साला, कोई चन्दन ले आई। सुनीति ने

पति को भीगे थ्रीन जाड़े से कांपते हुए देख कर उनके कपड़े बदल-वाये ग्रीर ग्राम तपा कर छन्हें खस्न किया । पीछे मुनिपन्नियों की दी हुई सामग्री परोस कर उन्हें मोजन कराया। ऐसी सुखाद मधुर वस्तु उन्होंने भ्रपनी जिन्दगी भर में कभी न खाई थी और वे भोजन करके कभी इस प्रकार छा भी न हुए थे। दु:खिनी सुनीति इस जड़ल में राजा के चोग्य कोमल शज्या कहाँ पाती ? उसने राजा के लिए करी के भीतर एक ओर अपना क़शासन विछा विया। राजा उसी पर सो रहे । नगर हो या वपेत्रन, कियों का स्रभाव सर्वत्र ही समान होता है। ग्रति मुनि की पत्नी ने खयं ग्राकर धाश्रमतस्मी का क्रेश बांध दिया। अपने आंचल से उसका मुँह पेंद्र कर उसके ललाट में कस्तूरी का तिलक और सिर में सिन्दर कर दिया । मेघ हट जाने पर पूर्णचन्द्र जैसा सुन्दर देख पड़ता है, उससे भी वढ़कर सुनीति का सुँह सुन्दर दिखाई देने लगा। "बेटी क्षप्मी ! जान्ना, भव पतिरूपी तारायण की सेवा करके कृतार्थ हो।" यह सहकर श्रतिपत्नी अपने घर चली गई'।

सुनीति झुटी का द्वार वन्द करके पित के पास वैठकर उनका पैर वावने जगी । उस समय उन दोनों में क्या क्या वातें हुईं, राजा ने किस वरह अपना दोष खीकार कर शत सहस्रवार जमा की प्रार्थना की, सुनीति ने किस प्रकार पित्रवा के योग्य प्रेम से उनका संकीच दूर किया, यह सब कहने की आवश्यकता नहीं, सहंदय पाठक-पाठिकामण खर्म अतुमन कर हों। सुनीति ने पित-सेवा से झतार्थ होकर प्रातःकाल पित को प्रणाम किया। राजा मी उसे बहुत तरह से समस्मा बुमाकर धपनी राजधानी को चले गये।

सुनोति इस प्रकार अत्रि मुनि के आश्रम में रहकर सुख-पूर्वक समय विताने लगी । इधर सुरुचि सीत की हटा कर एकाधीश्वरी हुई । वन, जन, सम्पत्ति, स्वामी सव पर उसका एकाधिकार हुआ । उसके पैर का कांटा और आंख का कंकड दूर हुआ । उसने से।चा कि अब वह निष्कण्टक सुख भोगेगी। किन्तु यह बात न हुई। उसका मन श्रग्रान्ति से भर गया। उसकी श्रशान्ति का प्रथम कारण लोकनिन्दा था, उसके डर से उसके, मुँइ पर कोई कुछ न बोलता या, परन्तु वह जानती थी कि परोक्त में सब लोग उसकी निन्दा करते हैं। जब से बड़ी रानी खोई गई है सब से सब लोग इसका देाप छोटी रानी के माथे मढ़ते हैं। सुरुचि की अग्रान्ति का दूसरा कारण यह भी वा कि जिनको लेकर वह सुख भीगती, वेही सुखी न थे। पतिसेवा में यद्यपि वह कोई बृटि न करती थी तथापि पति की प्रसन्न करना उसकी शक्ति से बाहर की बात थी । वह अपने हाथ से राजा के लिए नाना प्रकार के सस्वाद पक्तवान बनाती थी । अपने हाथ से उनका पलङ्ग विछाती थी, पर तो भी देखती थी, वे न कचिपूर्वक भोजन करते हैं, और न उन्हें अच्छी नोंद आती है। राजकार्य में भी उनका जी नहीं क्षगता था। वे कभी चैंक उठते थे, कभी विना कारण लम्बी साँस होते थे, कभी एकान्त में चुपचाप बैठकर आँसू वहाते थे। सुनीति के अन्तर्धान होने के पीछे उसका शयनगृह, उसकी शय्या, उसके भूषग्र-वसन श्रादि सब वस्तुएँ सुरुचि की हुईं। परन्तु सुनीति की कोई वस्त उसको विशेष आनन्द न देसकी । कारण यह कि सुनीति की ओई वस्तु देखते ही राजा का चेहरा उदास हो जाता

था । वे सुनीति के पलङ्क पर स्रोने की श्रपेत्ता धरती पर सोकर विशेष सुख पाते थे। सुरुचि इसका कारण राजा से न पूछ सकती थो । उनकी उदासी का जो कुछ कारण वह भ्रतुमान करती घो वह उसके हृदय को विदीर्थ कर डालता या । विशेप कर जिस दिन राजा आसेट से लीट कर घर आये, उस दिन से वनके सन का भाव ग्रीर भी वदल गया । सुरुचि के उत्पर राजा .के भ्रतुराग ग्रीर भ्रादर की कमी न थी, पर ता भी सुरुचि के मन को सन्तेष नहीं मिलता या। उसके सन्तोप में एक न एक वित्र म्रा पड़ता था। वह सोचती थी, जव सुनीति घर में थी तव इसकी श्रमेचा वह श्रधिक सुखी थी। राजा ऊपर के मन से उसको बहुत चाहते घे, परन्तु झन्तःकरण उनका किती थीर ही दुःस से दुसी रहता था । इससे सुरुचि के मन में वरावर उदासी वनी रहती घी । इसी समय सुरुचि के गर्भ से एक पुत्र उत्पन्न हुआ। पुत्रोत्पत्ति से सौत के ऊपर पूरा जयलाम हुन्ना जान कर धौर पुत्र के लाड़ प्यार में भूल कर सुरुचि के मन का उद्वेग कुछ दूर हुआ।

इधर तपावन में मुनीति भी गर्भिणी हुई थी। गर्भ का समय पूर्ण होने पर उसने एक बहुत सुन्दर पुत्र प्रसव किया। अति मुनि में बेदिनिधि से बालक का जातकर्म करके उसका नाम प्रव रक्ता और कहा कि "यह बालक संसार में जो एक मात्र प्रव है उसका लाम करेगा।" प्रव शुरू पच के चन्द्रमा की मांति दिन दिन वह कर माता के नयन और मन की लुप्त करने लगा। उसके काले धुपराले बाल, कमल से सुन्दर नेत्र, नये निकले हुए दो दांत देख देख कर सुनीति के सब हु:ख दूर हो गये। धूव कमशः मूमि पर

बैठने, घुटनेां के बत्त चत्तने, खड़े होने, कुछ कुछ चलने श्रीर देंड़िने में समर्थ हुआ। जब वह अपराह को मुनि-बालकों के साथ खेल कूद कर सारे बदन में मिट्टी लगाये घर आता था तब सुनीति र्यांचल से उसके शरीर की घूल काड़ कर उसे छाती से लगाती धीर अपने हृदय को ठंडा करती थी। महर्षि प्रत्रि की बड़ी लालसा लगी थी कि वे आश्रमलक्सी के मुँह पर हँसी देखें, उनका यह मनोरय पूर्ण हुआ। घ्रुव को देखते ही सुनीति का चेहरा खिल जाताया। उसको गुँह पर हँसी आ जाती थी। प्रति सुनि कभी कभी प्राङ् से देखते थे, "सुनीति ध्रुव की ग्रोर श्रीर ध्रुव सुनीति की श्रीर स्नेहभरी दृष्टि से देख रहे हैं। दोनों के होठों पर मीठी मुसकुराहट छाई है।" सुनीति करताली देकर ध्रुव को नाचना सिखलाती है। ब्रित्र सुनि स्वयं गृही थे, इसलिए पिता जिस तरह पुत्रवती बेटी की सन्तान के लालन-पालन में लगी देख कर सुखी होते हैं, वे भी बसी तरह सुनीति को प्रव का लाड़-प्यार करते देख कर सुखी होते थे। उनकी आँखें में प्रानन्दाशु उसड़ झाते थे।

ध्रुव क्रमशः किशोर श्रवस्था में प्राप्त हुआ। उस बढ़ने के साथ साथ उसके शरीर का सौन्दर्य मी बढ़ने लगा। उसकी तपाये हुए सोने के सहश देह की गोराई, श्रद्ध-प्रत्यङ्घ का सुन्दर गठन, मीठी ग्रुसकुराहट जो देखता वहीं मोहित होता था। सर्वोपिर ध्रुव का स्वमाव ऐसा कोमख था कि जङ्ग्ख के पशु-पत्ती भी उसका साथ छोड़ना नहीं चाहते थे। प्रुव ने माता की गोद में बैठ कर माता से भगवान का गुण गाना सीखा था। साँक को ध्रुव आश्रम के मुनि-बालकों को साथ ले अपनी कुटी की अँगनाई में उमङ्ग भरे मन से हरिकीर्तन करता था। हाथ उठा कर और नाच नाच कर सव लड़के गाते थे—

भेवा ! एक चार सव मिलकर आओ !

प्रुव गाता था—प्रेम भाव से पुलकित होकर,

प्रभुवर का गुण गाओ ।

वालक गण—आओ जङ्गल के पशुपची,

हिर से नेह लगाओ !"

प्रुव—ो सुख है हरिनाम भजन में;

सो सुख सब मिल पाओ !"

माता का उपदेश यही है,

हरि को भक्त कहाक्रो ।"

यद्यपि इस सङ्गीत में तान, लय, राग-रागिनी आदि का कुछ भी समावेग्र न बा, तथापि जो सुनता वही मेहित होता था। वहें बढ़े बढ़ ऋपीश्वर मी अपने निलानियमित पूजा-पाठ और होम मूल कर वह अपूर्व हरिकीर्तन सुनते वे और सुन कर ईश्वर के प्रेम में मग्न होकर आनन्दान्नु वहाते थे। कण्ठ में तुलती की माला, ललाट में गोभीयन्दन का तिलक, मुख में हरिताम, ऐसे परम भक्त धुव को देख कर जान पड़ता वा जैसे परमेश्वर का प्रेम मूर्तिमान होकर मूमण्डल में अवतीर्थे हुआ हो। घुन का मक्तिमान देख कर सुनिगण कहा करते थे, "ऐसी धर्मशीला माता के पेट से ऐसा पुत्र उत्पन्न होगा, इसमें आधर्य क्या है १%

ं मुनि के बालकगता जब तब कोई वात निकल श्राने पर श्रपने

अपने पिता का यश गाते थे। किन्सु ध्रुव ने कभी अपने पिता को न देखा था; इस लिए वह अपने पिता को विषय में कुछ न बेलता था। एक दिन बालकों ने ध्रुव से पूछा, ''कहो मैया, हम लोगों के वो पिता हैं, क्या सुम्हारे पिता नहीं हैंं ? इस लोगों ने तो कभी उनको न देखा ?'' ध्रुव ने शुँ इ बहास किये माँ से आकर पूछा—माता, ''सेरे पिता कहाँ हैंं ?'

यह सुन कर सुनीति चिक्त हो बेखी -- ''झाज तुमने यह क्यों पूछा ?''

क्या पुत्र । '''
प्रुत्न — मुन्तियों को खड़को सब कारन मुक्तसे कहते थे, हमारे समी के पिता हैं, क्या दुक्हारे पिता नहीं हैं ? माँ ! क्या सचमुच

मेरे पिता नहीं हैं ?" सुनीति—"ऐसी अग्रुभ बात न बेखि। शुन्हारे पिता क्यों नहीं हैं ? वे राजराजेश्वर हैं।"

के पास क्यों नहीं रहते ?" सुनीति—"यह मेरी अमाखता है ! वे अपनी राजधानी में

सुनात- यह भरा अमान्यता ह : व अपना राजधाना म

ध्रुव—''चनकी राजधानी कहाँ है ?"

सुनीति—"यहाँ से कुछ दूर यसना के किनारे की उपवादिका में उनका राजमवन है।"

घुव—''मैं एक बार वहां जाकर पिता कर दर्शन करना चाहता हूँ।''

सुनीति ने सन्दी साँस होकर कहा—"राजधानी यहाँ से

बहुत दूर है, तुम बालक हो। इतनां दूर श्रकेले च जा सकेगे। यदि परमेश्वर दया करेंगे तो तुम्हारे पिता ही तुमकी देखने आर्थेंगे। ध्रव ने इस बात का कुछ उत्तर न देकर श्रपने साथी वालकों

से अपने पिता का परिचय दिया। वालकों ने आपस में सलाह करके भूव से कहा—''चलो, हम लोग एक वार राजधानी जाकर तुम्हारे पिता को देख आवे'।"

ध्रुव ने कहा—"सेरी भी यही इच्छा है।" दूसरे दिस सबेरे ऋषिवालकों ने ध्रुव को साथ लेकर राजधानी

की यात्रा की। एक तो रास्ता किसी का देखा नहीं, दूसरे दूर तक जाने का अभ्यास नहीं। इस कारण वे सब घूमते फिरते ठीक देए-इर को राजधानी में उपिश्वत हुए। भूख-व्यास से सब व्याक्तल थे। उन्होंने समभा था, राजधानी ब्राक्षम के सहरा ही कुछ विलच्या

जगह होगी, किन्तु वहाँ श्राकर वे सब बढ़े बढ़े ऊँचे कोठों, हायी-घेड़ों श्रीर श्रस-शस्त्रघारियों से भरा हुश्रा स्थान देखकर टर गये। डन बासकों का भेष देखकर नगर-निवासियों ने तुरन्त पहचान

लिया कि ये लोग सुनिवालक हैं। इसलिए किसी ने भ्रादरपूर्वक उन वालकों को राज-सवन

दिखला दिया। ध्रनेक प्रकोष्ठ युक्त, पर्ववाकार, विशालभवन देख कर वालकों के ध्राश्चर्य की सीमा न रही। पहरेदार फीजी पोशाक पहने हाथ में नंगी वलवार लिये सदर फाटक पर पहरा दे रहे थे। उनका भयङ्कर रूप और अभिमान से भरा हुआ भाव देख कर

जनता भपक्कर एप आर आसमान स मरा हुआ मान दख कर श्रीर वालक पीछे हटे, किन्तु ग्रुन श्रागे वढ़ कर दोला, ''राजा कर्डा हैं ? मैं उनको देखना चाहना हूँ ।'' प्रहरी—''लड़के ! तुम महाराज को देखना चाहते ही ? तुम कीन हो ? कहाँ से आते हो ?"

ध्रुव—"में उनका बेटा हूँ। श्रित्र मुनि के झाश्रम से झाता हूँ।" प्रहरी—''राजकुमार ते घर पर हैं।"

ध्रुव--- ''प्रजा मात्र कहती है कि मैं राजा का बेटा हूँ। मैं राजा से भेंट कहुँगा।''

प्रहरी—"इम ऐसी ख़बर लेकर राजा के सम्मुख नहीं जा सकते।"

यह सुन कर उन बालाकों में जो अपेचाइन उस में बड़ा था वह आगे वढ़ कर बोला—''हम लोग ऋषिकुमार हैं, तपेदन से आते हैं। तुम्हारे महाराज को आशीर्वाद देंगे, खबर दे।''

सुनते ही द्वारपाल ने भीवर जा हाथ जोड़ कर राजा से निवेदन किया, "महाराज ! तपावन से कितने एक ऋषिकुमार श्रीमान को ध्याशीर्वाद देने के लिए आये हैं। आजा हो तो उन सवों को यहाँ लोग्रावें।"

राजा—"शीघ बुला लाग्रे। ।"

द्वारपाल का इशारा पाकर ध्रुव ध्रन्यान्य ऋषिकुमारों के साथ राजदरबार में जा उपस्थित हुआ। इतने दिन इन बालकों ने काव्य ध्रीर इतिहास में राज-सभा का जो कुछ वर्षन पढ़ा था वह आज इन्हें प्रत्यच देखने में आया। संगममेर के चित्रित संभी पर विशाल समामवन सुशोभित या उसके मीतर विशेष पत्थर का बना थोड़ा सा ऊँचा चबूतरा था। उस पर रज़जटित स्वर्णसिंहासन के ऊपर राजा उत्तानपाद राजसी ठाट में विराजमान थे। उनके इहने और बार्ये भाग में छोटे वहे ज़मीदार सामने मन्त्री श्रीर सभासद लोग वैठे थे । कुछ दूर पर याचक गण खड़े थे । उसके श्रास पास पहरे-दार हाथ में तत्तवार लिये इधर उधर घूम रहे वे श्रीरं हाय के इशारे से जनकोलाहल का निवारण कर रहे थे। राजसभा गम्भीरता से भरी थी । समारथ सब लोग चुपचाप राजा की ग्रीर देख रहे थे । अर्पिकुमारों ने चेदमन्त्र पढ़ कर राजा की ष्ट्राशीर्वाद दिया। राजा ने विनयपूर्वक सवको प्रयाम कर योग्य श्रासन पर विठाया। ऋषिकुमारों का सुक्रमार शरीर, किशोर श्रवस्था, प्रसन्न मुख श्रीर सरलभाव देख कर सभास्य सजनगण मुख पूर । विशेष कर उन सबों के बीच एक बालक की श्रीर सब की दृष्टि श्राकिपत हुई । उसका वेप-विन्यास यद्यपि ऋपियालक का सा या, तथापि उसके स्नाकार से चत्रिय का लच्च 'प्रकाशित हीता था। इस छोटी सी उल में भी उसका शरीर सुडील श्रीर बाजिछ था, जाती चौड़ी थी, बाँह शस्त्रधारण के योग्य प्रतीत होती थी। चेहरे से कोमलता के साथ साथ तेजस्विता सुचित होती थी। वह ध्रुव था।

छीर ऋषिकुमारों के बैठने पर ध्रुष राजा के सिंहासन के समीप जा खड़ा हुआ और दोनों हाथ जोड़ सिर नवा कर राजा को प्रधास किया।

राजा ने कहा—''मैं चित्रय हूँ। तुम अयुप्पुत्र होकर सुसे क्यों प्रकास करते हो ?"

घून—''श्राप मेरे पिता हैं। मैं श्रापका पुत्र हूँ।'' राजा—''तुम्हारा नाम क्या है ? तुम कहाँ से श्राते हो ?'' ध्रुव—''मेरा नाम घ्रुव है। मैं महर्षि अति मुनि के आश्रम से आता हूँ।''

राजा के सर्वाङ्ग में माने। बिजली दैाड़ गई। उन्होंने घ्रुव को खींच कर गोद में बिठाना चाहा, परन्तु संकीचवश वे ऐसा न कर सके। वे गद्गह कण्ठ से बोले—"वत्स! मैंने ते। कभी तुमको देखा नहीं। तुम सुको पिता बता रहे हो। तुम्हारी माता कीन है ?"

ध्रुय—"तपोचन में सब लोग उसे आश्रमलक्सी कहते हैं, किन्दु उसका असली नाम है सुनीति।"

सुनीतिकानाम सुनते ही राजा प्रेम से विद्वल हो गये। **उनकी लजा दूर हुई। उन्होंने अपने दोनों हाब आगे बढ़ा कर** घुव से कहा—''ब्राक्षो, प्यारे ! मेरी गोद में बैठा ।" यह कह कर . इन्होंने वड़े प्यार से ध्रुव को गोद में विठा कर उसे प्रपनी छाती से लगाया । उसके त्पर्शे से राजा का शरीर माना सुधासिक हुआ। सभास्थ लोग चित्र की भाँति निर्निमेष नेत्र से इस दृश्य को देखने लगे। कुछ ही देर में यह बात सारे महल में फैल गई कि "बड़ी रानी जीती हैं। उनका बेटा राजसमा में ब्राया है।" यह संवाद बहुत बढ़ा चढ़ा कर महल में पहुँचाया गया। दो एक दासी ने कहा कि इस बड़ी रानी को अपनी आर्थस से राजसभा में देख श्राई हैं। श्रहा ! उनका बदन सुख कर काँटा हो गया है। चेहरा एकदम काला हो गया है। देखने से कोई न पहचानेगा कि ये बड़ी रानी हैं। बड़ी रानी के आने की बात सुन कर सब लोग सुसी हुए, केवल कोई कोई कहने लगे—''घर की लच्मी घर आती हैं तो न्नावे', किन्तु **उनकी बाधिन सीत क्या उनको सुख से रहने** देगी ?"

यह ख़वर सुरुचि के पास क्क पहुँचने में देर न हुई। "सुनीति जीती है, उसका वेटा राजसभा में आकर राजा की गीद में बैठा है" सुनते ही थोड़ी देर के लिए सुरुचि वावली वन गई। उसके होश हवास जाते रहे। जिस दिन राजा शिकार खेलने के लिए जाकर अन्यत्र राज विता कर दूसरे दिन घर लीटे, उसी दिन से न भालूम क्यों उसके मन में कुछ सन्देह उत्पन्न हुआ था। इस समय उसे निश्चय हो गया कि वह सन्देह अमूलक न था। उसका धेर्य और संकोच एक साथ जाता रहा। वह उन्मादिनी की भांति क्रोध से लाल लाल आँख किये, आंचल खाले, सिर के वाल विखराये, राजसभा में आई। उसकी विचित्र दशा देख राजा और राजसभा-सद्गय चिकत हुए। द्वारपाल ने डर कर रास्ता छोड़ दिया। वह एकाएक सिंहासन के पास खड़ी हो बड़े कठोर खर में गरज कर भूव से बोली, ''तू कीन है १"

प्रव—"मैं ध्रुव हूँ ?"

सुरुचि-"कीन ध्रुव ? वेरे मावा-पिता कीन हैं ?"

ध्रुव ने राजा की श्रोर डिंगली दिखा कर कहा—''देखी, यही ं मेरे पिता हैं। मेरी माता का नाम सुनीति है।"

सुरुचि के इस वाक्य से ज्यधित होकर घ्रुव ने कहा—"मेरे पिता ने सुमको सिंहासन पर विठाया है । श्राप कीन हैं १॥ "मैं रानी हूँ । यह धनसम्पत्ति राजपाट सब मेरा है ।" प्रुव सुरुचि के कोघ और गर्व से भरे हुए मुँह की ग्रेगर देख कर बोला—"ग्राप रानी ग्रीर मेरी माँ मिखारिन ?"

ध्रुव के इस सरत प्रश्न ने सुकृष्टि को मर्मान्तिक पीड़ा दी। वह इस प्रश्न का कोई उत्तर न देकर बोली—''यह सिंहासन मेरे बेटे का है, तू इस पर क्यों बैठा?"

प्रुव--''यह सिंहासन मेरे पिता का है, उन्होंं ने सुमन्त्रो इस पर विठाया है।"

सुरुचि राजा की ग्रेगर रिसभरी चितवन से देख कर बोली—''महाराज ! धिक्कार है आप को ! अब वक आप उस मायाविनी के मेाहजाल में फॅसे ही हैं ! मुक्त पर और पुत्र पर छाप का क्षेत्रल बनावटी स्नेष्ठ है। नहीं ते। जिस स्त्री को आपने निर्वासित कर दिया, उसके पुत्र को सिंहासन पर क्यों बिठाया ?" राजा की इस प्रकार फटकार कर उसने घुत की छोर देख कर कहा---''मूर्ख वालक ! यदि तुम्हे श्रपमान का डर हो ते। फिर कमी इस सिहासन पर बैठने का साइस न कर । तूराजा का बेटा होने पर भी मेरा वेटा नहीं है। एक दुर्भगा की के गर्म से तेरा जन्म हुआ है। यदि तू मेरे गर्म से जन्म लेता ता तुभ्ने सिहासन पर बैठने का प्रवश्य ध्रिषकार होता । तुभा वनवासीको योग्य यह सिंहासन नहीं।" यह कह कर सुरुचि ने बरजोरी घ्रुव को सिंहासन से उतारने के लिए हाथ बढ़ाया । किन्तु घ्रुव उस के मन का माव समकं कर पहले ही सिंहासन से उत्तर गया। सुरुचि के इस बुरे व्यवहार से ध्रव का हृदय ग्रत्यन्त व्यथित हुआ। बड़े कष्ट से उसने आँख के श्रांसु रोक कर राजा से कहा—"ग्राप, राजाविराज हैं। श्राशी-

र्बाद दें, जिससे में राज-पद से भी कोई उचतम पद प्राप्त कर सक्तें।" आप ऐसा ही आशीर्वाद दीजिए जिस में यह सिंहासन मेरे योग्य न हो।"

ध्रुव ध्रव वहां चल भर भी न रह सका । उसी घड़ी वहां से चल दिया । उसके साधी ऋषिकुमार भी रापमरी दृष्टि से सुरुचि की ध्रोर देखते हुए ध्रुव के पीछे चले । सुरुचि के व्यवहार से राजा किंक्तर्वन्य-विमूद्ध हो रहे थे, ऋषि-बालकों के जाने के साथ साथ उन्होंने सभा विसर्जन की ।

इधर ध्रुव के एकाएक अन्तर्हित होने से सुनीति अत्यन्त न्याकुल हे। रही थी । पीछे जब उसने सुना कि ध्रुव ग्रन्यान्य अग्रिप-शलकों के साथ यमुना के किनारे से पूरव की श्रीर गया है तब वह मन ही मन सोचने लगी कि, ध्रुव ज़रूर ही राजधानी को गया है। लड़का इतनी दूर पैदल कैसे जायगा, राजा उसे देख कर क्या कहेंगे, दुष्टात्मा सुरुचि उसके साथ कैसा व्यवहार करेगी, इस चिन्तासे सुनीतिकाचित्त बड़ाही व्यवधा। वह ध्रुव के **भाने की बाट जोह रही थी। धुव के भाने पर वह उसका उदास** पेहरा देखते ही समक गई कि उसके मन में गहरी चाट लगी हैं। उसने उसे वहुत सान्लना दी, परन्तु धुन का मन किसी तरह शान्त न हुन्ना। राजसमा में वह लोकल्ला से मन के छेश की रोके हुए था। किन्तुमाताके निकट वह ग्रपने धैर्यकी रचान कर सका। वह भ्रातेंखर से राने लगा। उसका रोना देख सुनीति के हृदय में वड़ा कप हुआ। उसने उद्वित्र होकर प्रव से पृछा—"तुम

इस तरह अपीर होकर क्यों रोते हो ? क्या तुम्हारे पिता ने तुमसे कुछ कहा है ? या पुम्हारा विरस्कार किया है ?"

प्रव—''नहीं माँ! उन्होंने बड़े प्यार से मुफ्ते गोद में लेकर सिंहासन पर विटाया। किन्तु उसी समय एक खी न मालूम कहाँ से एकाएक वहाँ जा पहुँची। उसके बाल विखरे थे, आँचल का कपड़ा घरती पर गिरा था। उसकी आंख से माना ग्राग की चिन्तारियाँ निकल रही बीं। उसने गरज कर मुफ्ते कहा—''तू मिखारिन का बेटा डोकर क्यों सिंहासन पर बैठा है ?'' मैंने कहा, ''पिता ने मुफ्तो विटाया है ।'' यह मुन कर उसने कितना ही मुफ्त से कहा, वह आपसे क्या कहूँ ? वह मेरे पिता को घिकारने लगी। तुमको उसने दुर्मगा कहा। प्रधात उसने ज़बरवस्ती मुफ्तो सिंहासन से उतार देने की चेटा की, परन्तु मैं अपमान के भय से पहले ही उतर गया। माँ! वह कीन थी ?'' मुनीति सब समफ गई, बोली, ''वह तुम्हारी सैतिली मीं थी।''

ध्रव---"सैतिली मां क्या ?"

सुनीति—''तुम्हारे पिता की दूसरी पत्नी। तुम्हारे पिता ने जिस तरह मेरे साथ व्याह किया था उसी तरह उसके साथ भी ज्याह किया है।''

ध्रुव---"माँ ! तो वह रानी थ्रीर तुम मिखारिन क्यों ?"

सुनीति---''यह सेरे कर्स का फल है। वेटा! क्या तुमने श्रपनी विसाता से कुछ कहा या ?''

ध्रुव--- "नहीं माँ! मैंने उनसे कुछ न कहा। मैंने केवल पिता से कहा था--- "पिताजी! आप राजाधिराज हैं। आप आशीर्वाद दीजिए, जिसमें मैं राजपद से भी कोई ऊँचा पद प्राप्त कर सकूँ।"

सुनीति ने घ्रुव की गोद में लेकर उसका सुँह चूमा और कहा—"वेटा घ्रुव ! भगवान तुम्हारा मनेारख अवश्य पूर्ण करेंगे। तुम उन्हें प्रेम से पुकारा।"

ध्रव-"माँ, मैं उन्हें क्या कह कर पुकारूँ ?"

सुनीति—"तुम, उन्हें यह कह कर पुकारना—भक्तनसह नारायस, दीनवन्धु ! आश्रो ।"

घ्रुव-- "मेरे पुकारने से वे सुनेंगे ?"

सुनीति—"क्यां नहीं सुनेंगे।"

ध्रव—''वे कहां हैं ?"

सुनीति—"वे इस ष्टाकाश में हैं, वायु में हैं, जल में, यल में, मेरे, तुम्हारे भीतर सर्वत्र ज्याप्त हैं। तुम प्रेम से पुकारीगे तो वे ख़बस्य दर्शन हेंने।"

धुन-"मी, ते। मैं चला । तुम मेरे लिए कुछ चिन्ता मत करो। जब तक मुम्ने उनका दर्शन न होगा तब तक मैं न लीहाँगा।"

सुनीति—''तुम कहाँ जास्रोगे १ तुम यहाँ मेरे पास बैठकर दयानियान मगवान की पुकारो । तुम वालक हो, मैं तुमको स्रमी स्रकेले पने जङ्ग्ल में न जाने दूँगी ।"

ष्ट्रव्—"नहीं, मीं, मैं न मानूँगा। जहाँ मुक्ते कोई न देखेगा, मैं वहीं वैठकर अपने भगवान को पुकालँगा। तुम कहती हो, वे घट घट में निराजमान हैं। कोई स्थान ऐसा नहीं, जहां ने न हों, तब तुम्हें हर क्या ?"

सुनीति ने घ्रुव को कितना ही समभाया वुभाया, जब वह

किसी तरह उसकी धन को न फेर सकी तब उसने इपने हाथ से वैच्याव के भेस में सँवारा। उसके जन्मे वालों को समेट कर जुड़ा वीच दिया; वस्त्र खेलकर वस्कल पहना दिया; कण्ठ में तुससी की पाला पहना दी, उसके लखाट में गोपीचन्दन का तिलक कर दिया। इसके अनन्तर उसका मुँह चूम कर हाथ जोड़ रोते रोते वेलि—

''भक्तवत्सल, भगवान् ी श्रुव इतने दिन मेरा बा। झाज से वह आपका हुआ। आप उसको रचा करें।''

प्रव माता की चरख की भूल सिर पर डाल कर विदा हुआ। प्रति सुनि के तपोवन से दूर, घने जङ्गेख में ध्रुव ने धाश्रम वनाया । स्राप्तम नामसात्र का था। क्रुटी या फॉपडा क्रुछ न था। एक बहुत पुराना वड़ का पेड़ था, उसके नीचे एक चिकना पत्थर था, उसी पर घ्रव का सोना, बैठना श्रीर भगवान का भजन श्रादि भरना द्वेता या। लड़का तपस्या की विधि कुछ न जानता था । श्रासन, प्रावायाम, प्रत्याहारं श्रीर व्यान, श्रादि कैसे किया जाता है, यह भी वह वहीं जानता था। माता ने जिस महासन्त्र की शिचादी थी, घुन दिन रात वही चपा करता था। वही मन्त्र ध्रव के लिए जप, तप, पाठ पूजा छादि सब कुछ था। साँ ने कहा था, ''भगवान् सब में विद्यमान हैं, इसलिए ध्रव वरतता, पशुपची श्रादि जिसे देखवा था, उसी से कहता था-- 'क्या तुन्हों सेरे कमलनयन हरि हो ?" प्रेम की सहिमा ही ऐसी है, क्या जेतन क्या अचेतन सभी उसके द्वारा वश में होते हैं । ध्रुव के प्रेमगुएं से बाघ, मालू श्रपनी हिंसात्मक वृत्ति छोड़कार शान्त भाव से रहने

लगे। अचेतन पृत्त और लतावें असमय में फूलने फलने लगां। फिटार पत्थर को छेद कर निर्मल जल का स्रोत वहने लगा। प्रुव दिन रात फेवल यही पुकारता, कमलनयन, नारायण ! कहां हो ? आओ।। मां ने प्रुव से कहा था, "अच्छी तरह पुकारने से वे अववय आनेंगे।" प्रुव सोचवा था, "में इतना पुकारता हूँ, तो भी मेरे भगवान क्यों नहीं आवे ?"

इसी तरह बहुत दिन बीते । एक दिन घ्रुव ने देखा, "एक

भन्यसूर्वि पुरुष व्यक्त पास था रहे हैं। वनके सिर का वाल विलक्षल सफ़्रेंद हैं, लम्यों सफ़्रेंद वाढ़ी वोड़ी तक लटक रही हैं। श्वेत बख पहने हैं। श्वेतपुष्य की माखा कण्ठ में सुरोपिशत हैं। सुख प्रसन्न हैं। होठों पर सुस्कुराहट छाई हैं। मीठे खर में चार बार भगवान का नाम ले रहे हैं। प्रुव ने सोचा, "यही मेरे दीनवन्सु मगवान हैं। जिनको में इतने दिन से पुकार रहा था, वे सुमको दर्शन देने के लिए था रहे हैं।" प्रुव दीड़ कर गया और प्रपनी दोनों छोटी वाहों से लिपट कर उनसे पूछा—"क्या आपही मेरे कमलनयन मगवान हैं ?"

द्यागन्तुक घुव को गोद में लेकर वेलि—"मैं तुम्हारे भगवान् का दासानुदास हूँ। मेरा नाम नारद है। उन्होंने तुम्हारी लवर होने के लिए सुमक्तो भेजा है।"

प्रुव--''क्या चन्होंने मेरी पुकार सुनी है ?"

नारद—''जिस दिन से तुम उन्हें पुकारते हो उसी दिन से वे तुम्हारी पुकार सुन रहे हैं।"

घुव--"ता वे आते क्यों नहीं ?"

नारद—"मैं लीट कर उनके पास गया कि वे धाये।"

यह सुन कर ध्रुव की आँखों से आनन्दाश्रु वह चला। नारह ने पूछा—"तुम किस तरह छन्हें पुकारते हो, एक बार सुमको सुनाओ।"

भ्रुव ने चड़े प्रेस सेपुकारा—''कसलनथन हरे ! कहाँ हो, ब्राक्षेा ।" नारद—''ब्रीर कुछ नहीं कहते ?"

प्रव—"नहीं, मां ने इतना ही सिखाया है।"

नारद—''ध्रच्छा, अव मैं जिस माँति पुकारने को कहता हूँ पुकारो । पुकारो, कमलनयन, मगवान ! कहाँ हो, आग्रो, सुमा पर हवा करो ।''

नारद ने कहा—''कहो, कमलनयन, हरे ! कहाँ हो, आस्रो,

धुव---- 'जनस्तनथन, हर ! कहा हा ? आखा, सरा मारा पर ्वया करे। ''

नारद—"कहो, भगवान् ! मेरे पिता पर दया करो ।"

प्रुव---"भगवान् ! मेरे पिता पर दया करे।।"

नारद--- ''कहो, कमलनयन, करुणाकर ! कहाँ हो, भ्राकर दर्शन दो, भेरी सौतेली साँ पर दया करो।"

शत दा, मरा सातला मा पर दया करा ।" ध्रुव चुप हो रहा । नारद ने कहा—"ध्रुव, चुप क्यों हो रहे ?

घ्रुव चुप हो रहा। नारद ने कहा—''घ्रुव, चुप क्यों हो रहे ? कहो, मेरी सीतेज़ी माँ पर दया करो।''

प्रुव ने कहा—''उसने मुक्तको बहुत दुःख दिया है।''

नारद्—"इसीत्रिए तुमको उसके निमित्त मगवान् से यह वात कहनी होगी।"

ध्रव फिर चुप हो रहा।

नारद बेाले—''वी में जावा हूँ। क्या दुम नहीं जानते िक भक्त का कष्ट वे अपना ही कष्ट समभते हैं ? सीतेली माँ के कठार विचन से जा तुमने कष्ट पाया है, उसकी अप्रेचा तुम्हारे कमलनयन ने अधिक कष्ट पाया है। तो भी वे तुम्हारी सीतेली माँ की भलाई चाहते हैं, तुम उसकी भलाई नहीं चाहते ?''

ध्रुव कुछ देर नारद से मुँह की चोर देखवा रहा, तिसके धाद उसने पृष्ठा—"क्या कहा आपने ? मेरे कमलनवन मेरी सीतेजी मां का हित चाहते हैं ? तो में भी हित वाहूँगा।" कह कर उसने कहा—"मेरे कमलनवन, प्रभो! कहां हो, आधो। मेरी सीतेजी मां पर ट्या करे।"

इतना कहते ही ध्रुव ने देखा, नारद सुनि ध्रन्तर्थत हो गये ।
एकाएक अपूर्व प्रकाश से समूचा जङ्गल देदीप्यमान हो उठा । चारों
छोर से दिन्य सुगन्ध आने छीर अश्रुत-पूर्व मधुर सङ्गीत ध्रुव के कान
में श्रुतीकिक सुख वपवाने लगा । जो मूर्ति इतने दिन से ध्रुव के मन में निदार कर रही थी, वह आज उसकी आंखों के सामने प्रकट हुई । मक के साथ मगवान का मिलन कैसा ब्रानन्दप्रद होवा है, इसका वर्धन शब्दों द्वारा नहीं हो संकता । जिसने जन्म पाकर कभी इस सुख का ब्रास्यादन किया है, वहीं इसका श्रुत्यन कर सकते हैं।

कमलनयन प्रमु का दर्शन पाकर प्रुव कृतार्थ हुए ग्रीर उनके

श्रविच्छेद दर्शन की शक्ति लाम कर फिर अपनी भावा के आश्रम को लीट आये।

सुनीति गोद के वालक घ्रुव को पाकर बहुत प्रसन्न हुई । मानो हाथ की खोई हुई निषि फिर उसे सिल गई। वह धानन्द से विहुल हो भगवान को धन्यवाद देने लगी। ब्रांत सुनि, उनकी पत्नी, श्रीर अन्यान्य ऋषि सथा उनकी पत्नियों ने सुनीति की छुटी में प्रवेश कर ध्रुव को बड़े प्यार से गोद में विटाया और धारी-र्वाद दिया।

सहिर्षे प्रति ने कहा—"इवने दिन के अवन्तर मेरा प्राश्रम यथार्थ में पुण्यस्थान हुआ । भक्तचूड़ामिश ध्रुव को छाती से लगा कर प्राज में कृतार्थ हुआ ।"

ष्ठुव ने जिस समय अपनी सौतेली माँ के लिए ईश्वर से प्रार्थना की थी, उसी समय से सुरुचि की चित्तवृत्ति बदलं गई। वह ध्रुव को गोद में लेने श्रीर सुनीति से अपने अपराध की चमा-प्रार्थना करने के लिए ज्यम होकर अतिशोध राजा उत्तानपाद के साथ सहिए प्रार्थ के आअस को गई। वहां जा सुनीति की छुटी में प्रवेश कर वह उसके पैरी पर गिर कर बार बार चमा के लिए प्रार्थना करके कहने लगी—"बहन, मैं उत्मादिनी हो गई थी, मेरे सिर पर खार्थक्पी भूत सवार हो गया था, मेरा अपराध चमा करों, नहीं तो मैं प्राष्ट्र साग दूँगी।"

सुनीति ने कहा-- "वहन, तुम घन्य हो, तुम्हारी कठोर वाणी ने अमृत का काम किया। तुमसे तिरस्कृत होने ही के कारण श्रुव ने कमलनयन हरि का दर्शन पाया। तुम्हारा एक मी अपराध मेरे

पवित्रता । €8

समय को सुखपूर्वक विताने जागी।

मन में स्थान नहीं पा सकता। आग्रो, हम तुम दोनीं मिल कर पूर्ववत्

पति की सेवा करके नारी-जन्म की सफल करें।" सनीति के शेष जीवन का वृत्तान्त विस्तारपूर्वक वर्णन करने

भी प्रावश्यकता नहीं। वह प्रत्रि मुनि ग्रीर उनकी पत्नी तथा श्रन्यान्य ऋषिपश्लियों से मिल कर सबसे ब्राशीर्वाद ले पति पुत्र के

साथ राजधानी को लीट गई। प्रव की माता का जैसा सम्मान होना चाहिए, उस सम्मान को पाकर वह अपने जीवन के शेष

तीसरा श्राख्यान

गान्धारी :

अधिश्च नद के पश्चिम किनारे जो जमीन कमशः ऊँची होकर उत्तर पश्चिम की ओर खेत पर्वत से जा मिली है. पूर्वकाल में उसका नाम गान्धार देश था। इसी गान्धार शब्द से इस प्रदेश का

कुछ श्रंश श्रव तक 'कुन्दहार' नाम से मशहूर है। हम जिस समय का चुत्तान्त लिख रहे हैं, उस समय गान्धार

देश का राजा सुक्त था।

गान्धार देश प्राकृतिक निज्ञां शोभा से भरा था। कहां कोसें तक मैदान, कहीं दुर्गम पहाड़ी भूमि, कहीं सघन वन, श्रीर कहीं उचिगिरिशिखर इस देश की शोशा को वढा रहे थे। जाडे के मै।सम में पहाड़ के शृङ्गसमृह वर्फ़ से देंक जाने के कारण रजत पहाड़ की भाँति सुन्दर देख पड़ते थे। वसन्त ऋतु में वे भाँति भाति के तृष्, लता श्रीर पैधों से भूषित होकर श्यामल शोभा से दर्शकों के नयन तुम करते थे। गरमी के दिनों में सारा प्रदेश श्रनार की फूल सा लाल हो जाता था। बरसात में गृहस्थों की घर, भागत, वन उपवन भ्रादि सभी खान गुच्छ के गुच्छ दाख के फलों से भर जाते थे। गान्धार देश के खेतों में पुष्टिकारक सुस्वाद अन उपजते थे. वार्गों में भाँति भाँति के असूत से मीठे मेंने फलते थे, नदी की बालुओं में सोने के करा पाये जाते थे। देखने से यही जान पहता या जैसे लक्ष्मी ने इस देश को अपना क्रीड़ा-स्थल बनाया है।

राजा सुबल के एक बेटा था श्रीर एक वेटी। वेटे का नाम शकति. ग्रीर बेटी का नाम गान्यारी था। इतने श्रन्छे श्रन्छे नामें। को रहते राजकुमार का नाम शकुनि क्यों रक्ता गया, यह वत-सामा कठिन है। जान पढ़ता है, उसका खरूप श्रीर स्त्रभाव कुछ क्कुछ गिद्ध से मिलवा या इसीलिए लोग उसे शक्कीन नाम से पुका-रने लगे होंगे। स्वरूप उसका जैसा कुछ रहा हो परन्तु उसके ख्रभाव में अवश्य गिद्ध का लच्च था। गिद्ध की भांति उसकी दृष्टि बड़ी तीच्य थी। गिद्ध जैसे दृष्टिपथवर्वी वस्तुओं में मुदीं को क्षोड और वस्तु में विशेष प्रीति का अनुभव नहीं करता, राजकुमार शक़्ति भी वैसे ही सांसारिक अनेक विषयों में लोगों के बुरे के सिवा और फिसी कार्य में विशेष सुख का अनुभव नहीं करता था। वासपन से ही उसकी कपट बुद्धि प्रकाशित होने लगी थी। किन्तुः राजा सुवल के वही एक सात्र पुत्र या इसलिए कोई उससे कुछ न कहता था। वल्कि ख़ुशामदी लोग कहा करते थे कि—''राजक्रमार जैसे तीस्पायुद्धि हैं, उससे जान पड़ता है, युवावस्था में वे एक श्रसाधारण राजनीतिज्ञ होंगे।"

राजकुमारी खरूप श्रीर खमाव में माई से विज्ञाल जुदी थी। गान्धार देश की क्षियां उस समय अनुपम सौन्दर्य के लिए सर्वत्र प्रसिद्ध थीं। किन्तु गान्धारी उन सवों में एक थी। उसके श्रागे वड़ी वड़ी रूपवती िषयों का रङ्ग रूप कीका मालूम होता था। उसको देखने से यहीं जान पढ़ता थां जैसे स्वर्ग से कोई देवकन्या भूमण्डल में उतर आई है। वाहरी सौन्दर्य की अपेचा उसका मानसिक सौन्दर्य श्रीर मी प्रशंसनीय था। वह गुरुजनों के प्रति भक्तिमती, देवता ब्राह्मणों के प्रति अद्धावनी और आश्रित जनों के प्रति दयावती थी। वह अपनी सुशीलता के कारण नगर-निवासियों के विशेष आदर की पात्री बनी थी। सब गुलों से विशेष गुण उसमें यह था कि वह माता-पिता के आदेश की सर्वोपरि मानती थी।

राजकुमार और राजकुमारी दोनों जन कमशः युवल को प्राप्त हुए तब राजा सुनल पुत्र को राज्याभिषेक कर कन्या के लिए उपयुक्त वर खोजने में प्रवृत्त हुए। राजकुमारी के रूपगुण की प्रशंसा सुन कर देशदेशान्तर के भूपगण दूत के द्वारा गान्धार-राज के पास व्याह का पैगाम भेजने लगे। एक वा राजकुमारी अनुपम सुन्दरी थी; दूसरे वह महादेव की आराधना से बहुपुत्रवती होने का वरदान पा खुकी थी। इसलिए किसने ही पुत्राभिलाणी राजा और राजकुमार उसके साथ व्याह करना चाहते थे। उन लोगों के भेजे हुए दूत बरानर महाराज सुनल की राजधानी में आते जाते थे। किन्तु उन प्रार्थी राजगणों में सबसे थेग्य कौन हैं, इसका निर्णय न कर सकने के कारण सुनल कहीं कन्या का सम्बन्ध स्थिर नहीं कर सकते थे।

योही कुछ दिन वीतने पर ख़बर आई कि हिस्तापुर से कुरुकुल के गीरवस्वरूप मीष्म का भेजा हुआ दूत राजकुमारी के व्याह का पैगाम लेकर श्राया है। राजा ने दूर को यथोचित सत्कार करने की श्राहा दे, युवराज शकुनि और प्रधान मन्त्री के साथ सभागृह में प्रवेश किया। कुछ ही देर में दूत श्रीर उसके साथी लोग राजा के समीप उपस्थित हुए । बहुतेरे भारवाहक भाँति भौति के बहुमूल्य उपहार लेकर दूत के साथ आये थे। कीई रब्रजटित सोने के प्रनेक सूपण, कोई जड़ाऊ रेशमी कपड़े, कोई इत्र गुलाव, चन्दन ग्रीर कपूर श्रादि सुगन्धित पदार्थ, कोई राजाओं के व्यवहार योग्य बहुमूल्य श्रक्त शक्त लाये थे। नाना प्रकार को पकवानों का भी अभाव न था। दूत ने उपहार की सब वस्तुओं को यथास्थान रखकर भ्रमिवादनपूर्वक राजा से विनयपूर्वक कहा-"महाराज ! कुरुकुलश्रेष्ठ भीष्म ने श्रापकी नमस्कार करके क्रुप्रात पूछा है। उन्होंने सुना है कि आपके एक दिवाह-थाग्य कत्या है। उन्होंने ग्रपने भवीजे धृतराष्ट्र के लिए वह राजक्रमारी माँगी है। उन्होंने कहा है कि इस सम्बन्ध से दोनों राजवंशों की मानरचा होगी और वंशक्रमागत प्रीति खीर भी टढ़ होगी। स्रव श्रीमान की जैसी इच्छा है।।"

राजा ने कहा—''हम हुम्हारी मीठी वावों से बहुत प्रसन्न हुए। इंडवंशी के साथ वैवाहिक सम्बन्ध करना नि:सन्देह प्रतिष्ठा की बात है। किन्तु इस विषय में सब वावों का विना विचार किये सहसा उत्तर हे देना ठीक नहीं। तुम लोग बहुत हूर से आने के कारण घने हुए हो, बाज विशास करो। कल इस तुम्हारे प्रश्न का विवत उत्तर देंगे।"

दूत राजा की प्रधास करके अपने साधियों के सहित बाइर गया। तब राजा ने बृद्ध सन्त्री से पूछा—''इस विषय में आपकी क्या राय होती हैं ?" मन्त्री—"महाराज! इस विषय में हमारी राय शुक्तिसंगत न होगी। महाराज जो विचार करेंगे वही ठीक होगा। महारानी श्रीर शुवराज के साथ परामर्श करके जो कर्वव्य हो महाराज स्थिर करें।"

शकुनि—''जिन बातों का सम्बन्ध राजनीति से है, ध्रीर जिस विषय पर राज्य का हिताहित निर्सर है, अन्तःपुर में उसकी आलोचना उचित नहीं। उसका विचार यहीं होना ठीक है।"

मन्त्री—''इस विषय के साथ राजनीति का क्या सम्बन्ध है, यह मेरी समभ्क में नहीं झाता।''

शक्कृति—''समभ में आनेगा भी नहीं। यदि आप में यह शक्ति रहती तो गान्धार राज्य की कुछ ख्रीर ही अवस्या होती।"

मन्त्रो—"युवराज ! मैं यूदा हुआ, बुद्दापे के कारण मेरी इन्त्रियाँ शिक्षिल हो गई हैं, बुद्धि सन्द हो गई है, इसिलए मेरी मूल चमा करें। राजकुमारी की इस विवाह-वार्ता के साथ राजनीति का क्या सम्बन्ध है, यह आप कहिए।"

शकुनि---''सो पीछे कहूँगा। मेरा श्रीर मेरी माता का श्रमिप्राय महाराज जानेहींगे। आप अपना श्रमिप्राय कह सुनाइए।''

राजा ने भी कहा—''हाँ, आप कहने में कुछ संकोच न करें। आप वंशपरम्परा से मेरे शुभ-चिन्तक हैं। जो आप अच्छा समामें वह निर्मय होकर कहें।"

मन्त्री—'महाराज ! मैं क्या निवेदन करूँ ? कुरुवंशी के साथ सम्वन्य करने में कोई हानि नहीं । परन्तु राजकुमार धृतराष्ट्र जन्मान्य हैंंो जनके साथ क्रस्मीस्वरूपा राजकुमारी का प्रवास ।

व्याद करना उचिव है या नहीं, यह समं महाराज विचार करें।"

राजा—"धुराष्ट्र जन्मान्य हैं।"

सन्त्री—"हां महाराज ! जन्मान्य हैं।"

राजा—"वा यह ज्याद कैसं होगा ? शकुनि ! सुम क्या
फहते हो।"

यकुनि—"में कपना राय पीछं कहुँगा। पहले मैं मन्त्री
महाराय से कई वावें पूछना चाहता है। अञ्च्छा कहिए तो आप
कुन्मपर्य में विवेशी-स्नान करने प्रयाग गर्य थे ?"

सन्त्री—"हां।"

राकुनि—"आप को स्मार्य है, उस मसय कितने राजकुनार

मन्त्री—''टज़ारों।'' गकुनि—''दन राजकुमारों में धृतराष्ट्र के समान कार्र सन्दर था।''

सन्त्री—''नहीं । रूप में ये साजात् कार्तिकेप के समान हैं।' यकुति—''कल-पराक्रम में वे कैसे हैं १''

पहण्डी कि स्वतंत्र के स्वतंत्र हों भी उनके सामने सिर नहीं इंडा सकते । उनके वहा के सम्बन्ध में जो में अपनी श्रांत से देशा है, गृह आप से निवेदन करता हूँ। पर्व से दिन बड़े पड़के भारता से महाराज नहा कर बड़ा विशास हाथी पागत होकर

कामरूप के महाराज का एक वड़ा विशाख हाथी पागल होकर महावत की मार बाजियों को रीहता हुआ संगम की श्रीर दीड़ा जा रहा था। उसे देस जनसमूह में भारी कीलाहत हुआ । चारों श्रीर इलचल मज गई। सभी लीग प्राथमय से

जिधर तिघर भागने लगे । इघर मत्त हाथी सामने में जो पड़ता उसे पैरों से कुचलता वीर्थवासियों की कुटी को सुँड़ से तेड़ता हुन्रा कमशः आगे बढ़ने लगा । राजकुमार उस समय ख़ेमे के भीतर थे। वे यह खबर पाते ही बाहर आकर खड़े हुए। उनके इष्ट मित्र नैंकरों ने उन्हें बहुत रोका, पर उन्हेंने किसी की बात पर ध्यान न दिया। हाथी उन्हें रास्ते में खड़े देख, सजीव पहाड़ की भांति बढ़े वेग से उनकी भ्रोर देखा । "राजकुमार मरे, राजकुमार मरे" यह बाक्य उच्चारित होते न होते हाथी उनके पास जा पहुँचा श्रीर सूँड़ से लपेटकर उन्हें दे मारना चाहा, राजकुमार उसके घंटानाद से उसको प्राते हुए जानकर पहले ही से सार्वधान हो खड़े थे। उन्होंने उसके आक्रमण करने के पूर्व ही एक बड़े मोटे लोहे के डंडे से इसे इस ज़ोर से मारा कि वह पाँव में सख़ चीट खाकर तुरन्त धरती पर गिर पड़ा । यह देख कर तीर्थवासी साधु-संन्या-सीगण प्रांकर ग्रानन्द से पुलकित होकर राजकुमार की प्रांशी-. बीद देने लगे। महाराज! मैं सच कहता हूँ, राजकुमार के तुल्य बलवान विरला ही कोई होगा।

शकुनि—''उनका शास्त्रज्ञान कैसा है ?'' मन्त्री—''सुना है, वेदवेदाङ्ग सब उन्हें कण्ठस्य हैं !'' शकुनि—''उनके वंशगीरव के विषय में खाप कुछ जानते हैं ?''

मन्त्रो—''चन्द्रवंश के गैरित के सम्बन्ध में कुछ कहना व्यर्थ है। राजा ययाति, पुरु, दुष्यन्त और कुरु ब्यादि राजिंधेंग ने इसी वंश में जन्म प्रहण कर इस की सर्यादा बढ़ाई है।" शक्कृति—"मन्त्रिवर ! तो इनमें दोष क्या १" सन्त्री—"वे जन्मान्ध हैं।"

शक्किन-तत्र तो ''विदेव झानिनां चन्नुः "

यह नाक्य थ्रापके विचार से व्यर्थ होता हैं ? ज्ञानी पुरुपों की चर्मचत्तु रहे चाहे न रहे, इससे क्या ?

मन्त्री—''मेरी अल्पनृद्धि में जो वात अल्छो जान पड़ी वह मैंने कही । कर्तव्य अकर्तव्य को निर्मय का मार आप लोगों के ऊपर निर्भर है।"

राजा—"हाय ! हाय ! इतने दिनों के बाद कुल, शील, रूप, गुर्य में यदि एक योग्य वर मिला भी तो नेत्रहीन ! शकुनि ! में ऐसी रूपवर्ती कन्या का ज्याह धन्धे वर के साथ कैसे फरूँगा ?"

शकुति—''महाराज ! राजधर्म वड़ा कठिन है। उसमें माथा ममता की अपेचा भविष्यत् महुत्त के लिए चित्त की दृढ़ता ही अधिक प्रयाजनीय है। मन्त्री महोदय इससे पूछते थे, इस विवाह के साथ राजनीति का सम्बन्ध क्या है ? अच्छा, हम समकाये देते हैं। सुनिए।"

हम लोगों के इस गान्धार देश पर यहुतों की दृष्टि गड़ी है। एक तरफ़ शक श्रीर वाद्योक श्रादि असम्य जाति इस अत्र धन से सम्पन्न देश को लूटना चाहुती है। दूसरी तरफ़ पश्चनद्वासी राजगण मांसलेल्विप विद्यो की भांति इसे भ्रम्पटने के लिए घात लगाये बैठे हैं। इस अवस्था में किसी प्रवल राजवंश से साथ सम्बन्ध जोड़ना हम लोगों का नितान्त कर्तव्य है। ऐश्वर्थ श्रीर पराक्रम में कुरुवंश श्रमी मारत के समस्त भूपाणों से बढ़ा चढ़ा है। उसके साथ वैवाहिक सम्बन्ध होने से क्या श्रार्य, क्या श्रनार्य, कीई शत्रु हम लीगों के अनिष्ट करने का साहस नहीं कर सकेगा। राजकुमारी की श्रुतराष्ट्र के साथ व्याह देने से हम लीग समरविजयी वीर भीष्म को अपने पच्च में ला सकेंगे। श्रन्यश्रा जनके कोष-भाजन वनेंगे। यह साधारख वात नहीं है। महाराज! श्राप श्रपने राज्य के कल्याखार्थ इस सम्बन्ध की सम्मति दीजिए, राजधर्म के रचार्थ अयोज्याधीश महाराज रामचन्द्र ने धर्मपक्षी की निर्वासित कर दिया था। क्या यह बात खापसे हिस्पी है ?"

राजा—"वत्स! तुम्हारा कहना ठीक है। किन्तु तुम्हारी माँ तो राजधर्म्म नहीं जानतीं। वे क्या कहेंगी ? या गान्धारी ही क्या सोचेगी ?"

शकुनि—"महाराज! आपकी आज्ञा का भन्न कैन करेगा? माँ अपनी जिन्दगी में कभी आप के प्रतिकृत बात बोल ही नहीं सकती। वहन गान्धारी का तो कुळ कहना ही नहीं। वह तो आपके बचन का देववाणी से भी बढ़ कर आदर करती है।"

राजा---''सच है। फिल्तु गान्यारी सी कन्या को अन्धे वर के साथ व्याह देना क्या उचित होगा ?''

शकुनि—"महाराज ! सभी लोगों के ग्रुँ इ से यही एक बात "भ्रन्य, ग्रन्थ" सुनाई देती है । सच पृष्ठिए वो नेत्र मनुष्य का एक भारी शत्रु है । नेत्र ही रूप की लालसा उत्पन्न करता है । इसी रूपजाल में फँस कर कितने ही राजकुमार पविष्राधा पत्नी को वज कर दूसरा ज्याह करते हैं । भूतराष्ट्र के साथ ज्याह होने से राज- कुमारी को सीत की आशक्का न रहेगी। मैं वहन गान्धारी का स्त्रभाव मली भाँति जानता हूँ। पति अन्धा या लूला ही लँगड़ा क्यों न होगा, वह उसे देवता जान कर सेवा करेगी, पतिसेवा करके वह आप सुखी होगी और पति की मी सुखी करेगी। 17

राजा—''चेटा शकुनि ! देखता हूँ, तुम वहं दीर्घदर्शी हो । भग-वान तुम्हें चिरकोबी करें। जब तुस कहते हो कि इस संस्थम्ध से राज्य का कुराल होगा श्रीर गान्धारों के मन में भी दु:ख न होगा तत्र इसमें मेरी असम्मवि नहीं । में रानी की अपना अभिप्राय सुचित करने के ज़िए अन्तःपुर जावा हूँ। तुम मन्त्री महाशय के साथ परामर्श करके उपयुक्त प्रत्युपहार की आयोजना करे। मैं कल ही इस्तिनापुर दृत भेज्ँगा । जब तुन्हें पसन्द है वे। यही सम्बन्ध सिर हुआ।" यह कह कर राजा अन्त:पुर गये। किन्तु उनके ब्रन्त:पुर जाने को पूर्व ही राजकुमारी के ज्याह की ख़बर वहाँ पहुँच गई थी और इस वात को लेकर महल के भोतर भारी धान्दोलन हो रहा या। कोई कह रही थी, राजा ने यह नया किया, ऐसी सीने की प्रतिमा की स्रन्धे के हाथ दिया ! कोई बोली-''यह ते। जानी हुई वात है, जब वैसे वैसे सुन्दर वर फिर गये, कोई राजा, ग्रीर रानी को पसन्द न आया, तब अन्त में ऐसा होना ही चाहिए।" एक ने नहा—"श्रीर जो कुछ हो, वंश वहुद उत्तम है।" दूसरी स्त्री वोली-- ''यही कैसे कहूँ ? वाप मरने के वहुत दिन बाद ते। इस लड़के का जन्म हुआ था। जी कुछ हो, इस सबों की इससे क्या मतलब ? जिनकी लड़को है, वे बदि उसे पानी में फेंक दें तो हम सब क्या करेंगी !"

धीरे धीरे यह वात राजकुमारी गान्धारी के कातो तक जा पहुँची। उसकी एक प्रिय सखी उदास गुँह किये उसके पास आकर वेलि—''प्यारी सखी। एक वात सुन कर मन में बड़ा दु:ख हुआ है। वही तुम से कहने आई हूँ।''

गान्धारी—''सखो ! तुम्हें बहुत उदास देखती हूँ, क्या सुन कर आई हो, कहो ।''

सस्तो-"तुम्हारे व्याह की बातचीत पक्की हो गई।"

गान्धारी ने इँस कर कहा--''हुई तो हुई, इसके लिए तुम इतनी खदास क्यों हो ? क्या तुम चाहती हो कि मैं बुढ़ापे तक छुमारी रह कर तुम्हारे ही पास रहूँ ? कहाँ सम्बन्ध स्थिर हुआ है ?"

सखी-"इस्तिनापुर के राजकुमार धृतराष्ट्र के साथ।"

गान्धारी ने मुस्कुरा कर कहा—"तुस्हारे साथ न होकर मेरे साथ उनके व्याह की बातचीत हुई है, क्या इसी से तो तुम इतनी उदास नहीं देख पड़तीं ? इसके लिए इतना सोच क्यों ? तुम तो मेरे सुख-दु:ख की संगिनी हो, न हो तो तुम उस में प्राथा माग से लेना !?

सबी—"तुम नहीं जानतीं कि विधाता ने तुम्हारे घटण में क्या लिख दिया है। इसी कारण तुम ग्रुम से ज्यङ्ग करती हो। सुना है, राजकुमार पृतराष्ट्र जन्मान्य हैं।"

सुनते ही राजकुमारी का हृदय काँप बठा, किन्तु नेहरे पर जरा भी उदासी का चिह्न दिखाई नहीं दिया। उसने कहा—"क्या सन्-सुच ही बातचीत एकी हो गई १ किसने सम्बन्ध स्थिर किया है ?" सखी—"खर्य महाराज ने। सुना है, कल ही राजदूत यह संवाद लेकर इस्तिनापुर जायगा । पहले महाराज की इस विवाह
में सम्मति न थी, किन्तु युवराज ने जब उन्हें समम्मा दिया कि
गान्धारराज्य के कत्याधार्थ यह सम्बन्ध माहा है । शत्रुमण्डली के
बीच से गान्धार राज्य के रचा के लिए किसी पराकमी राजर्वश के
साथ सम्बन्ध करना उचित है । इस पर महाराज ने ध्रन्त में
सम्बति दे दी । सब वार्व ठीक हो गई (""

गान्धारी—"सली ! यदि यही है, तो इससे बढ़कर मेरे सीभाग्य की बात खीर क्या होगी ? गान्धार राज्य के मङ्गलार्थ विवाह की कीन वात, मैं अपना प्राया वक देने में कभी कुण्ठित नहीं हो सकती।"

सखी—"जुम नहीं समस्ति हो, चली, हम दुम दोनी रानी के पास चलें। मैं उनसे कहूँगी, इस विवाह में मेरी सखी की राय नहीं होती। तुम्हारी राय न होने से वे कभी विचार न देंगी। जब उनका विचार न होगा तब महाराज को भी हार कर प्रयनी राय धरहनी पढ़ेगी। तुम ज़रा भी इसमें संकोच न करें। प्रव भी समय है। चलो, शीघ चलो, मैं तुम्हें प्रयने साथ से चलती हूँ।"

गान्धारी—''सखी ! तुम अवीध की तरह वात करती हो । पिता जब मेरे व्याह की बात िखर कर जुके हैं, जब वे मेरे दान का संकल्प कर जुके हैं तब मैं अपने को बाग्दत्ता समम्तती हूँ। अब मेरे पति अन्य हों, वा बियर हों, इसमें मेरा क्या हानि-लाभ। देवता की मूर्ति सिट्टी की हो या सोने की, मर्कों के निकट दोनों बरावर हैं। मक उसमें देवल आरोपख करके पूजा करते हैं श्रीर मुक्ति पाते हैं। मैं अपने स्वामी में ईश्वरमाव का ध्रिष्ठान करके उनकी सेवा कहाँगी। उसी से मेरा परम कल्याय होगा।"

साबी--''धर्मज्ञान से द्वम जो कही, किन्तु अन्धपति की क्या दुम हृदय से प्यार कर सकीगी १"

गान्धारी—''क्यों न कर सकूँगी ? उनकी अञ्जूहीनता यदि मेरे मन में खेद उत्पन्न करेगी तो मैं उसका प्रतीकार करूँगी! उनका ग्रन्थापन जिसमें मैं न देख सकूँगी, उसका उपाय मैंने सीच रक्खा है। जिस दिन मैं पिवा के मुख से अपने इस ज्याह की वात सुनूँगी उसी दिन मैं अपनी आंखों पर कपड़े की पट्टी चढ़ा लूँगी! इससे वे सुन्दर हैं या कुरूप नेत्रवान हैं या नेत्रहीन यह मैं न देख सकूँगी! यदि मेरे खासी ग्रुक्तों विना देखें ग्रुक्त पर प्रेमप्रकाश करके अर्मपन्नी बनाकेंगी शें उनको न देख कर उन्हें लोहपूर्वक क्यों न पित बनाऊँगी ?"

सखी—'मैंने तुमसे द्वार मानी । मैं साधारण सनुष्य हूँ,
मनुष्य की तरह बात कहती हूँ । तुम देवी हो, देवी की तरह बात
करती हो । भगवान करे, तुम को इतने दिन से भगवान की पूजा
करती हो वह सफल हो । तुम दोनों पित-पत्नी में उन्हीं का सा
प्रेमभाव उत्पन्न हो । मैं जावी हूँ, महारानी की आहा से मैं तुम्हारे
मन का मान धूमने आई थी।''

कुछ दिन के अनन्तर गान्धारी का व्याह कुरुवंश के राज-कुमार धृतराष्ट्र के साथ हो गया । पिता का वाग्दान होते ही गान्धारी ने कपड़े से अपनी दोनों आँखें बांध खीं और उसी तरह हस्तिनापुर गई। धृतराष्ट्र जन्मान्ध होने के कारख गान्धारी को न देख सके। गान्धारी भी आंख पर पट्टी बांब होने के कारण घृतराष्ट्र को न देख सकी। किन्तु हृदय के नेत्र से दोनों ने दोनों को देखा। दोनों प्रेम के रंग में रॅंग गये और प्रीतिपूर्वक सांसारिक धर्म का पालन करने होगे।

राजकुमारी की मुशीलवा और सद्व्यवहार देख कर पुरवासी लोग सब उसे हृदय से ध्यार करने लगे । "पातित्रत्य धर्मे में वह सीवा और सावित्री के बराबर बी" उसके पातित्रत्य का यश देश-देशान्तर में फैल गया।

यबासमय गान्धारी के गर्भ से दुर्योधन और दु:शासन भारि श्रमेक पुत्र कमरा: उत्पन्न हुए । उन लोगों की कथा कहने के पूर्व-प्रसंगानुसार इस दे। एक वात यहां उल्लेख करके श्रागे वहेंगे । लोग कहा करते हैं कि सुसावा के पेट से सुपुत्र ही जन्म होता है। यह बात सामान्यतः सत्य होने पर भी सब जंगह चरितार्थ नहीं होती । पुराण की बात जाने दीजिए । इतिहास ही की बात लीजिए। इन्दौर के होतकर वंश की प्रसिद्ध रानी श्रहिल्यावाई का नाम कैन नहीं जानता। उनको सी धर्मशीला, श्रीर दयावती स्त्री संसार में बहुत कम पैदा हुई हैं। उनके चरित्र के लेखक लिखते हैं, ''मनुष्य से लेकर चींटी पर्यन्त सभी जीवेां पर उनकी दया रहती थी। वे प्रति दिन साधु-महात्माओं को मोजन देवी घीं श्रीर पर्व-त्यौहार पर या किसी विशेष उत्सव के दिन कंगालों को अन्नदान देती थाँ । अन्नदान के समय वे जाति का विचार न करती थीं। चण्डाल ध्रीर मुसलमान श्रादि जो कोई मुखा उनके यहाँ ग्रा जाता या उसे अवश्य भोजन देती थों । जाड़े में दीन दुखियों और बृढ़ों को जाड़े का कपड़ा देती थीं ।

गान्वारी।

गरमी के दिनों में प्यासे पश्चिकजनों को पानी पिलाने के लिए राज-मार्ग के किनारे जगह जगह पर कितने ही लोगों को नियुक्त करती थीं। वे कमी कभी अपनी राजधानी को छोड़ कर नर्मदा के किनारे माहेश्वर नामक एक करती में जाकर रहती थीं। वहां के किसान जब

लिए क्षोड़ देती थीं। दूर दूर से मुख्ड के मुख्ड पची आकर वहाँ भाश्रय होते से और बड़ी निर्भयता के साथ दाना चुगते से । मछलियों के लिए वह सम्मेदा के जल में सन्त और गेहूँ का भ्रटा। दलवाती शीं। जब वे सुनती शीं कि उनके किसी आश्रित या कर्माचारी के घर सन्तान पैदा हुई है तब वे उस बच्चे को दूध पिलाने के लिए एक दुधार गाय भेज देती थीं। तीर्थयात्रा के समय वे अनेक प्रकार के फलों के बीज अपने साथ ले जाती थीं। जिस मैदान में, जिस नदी श्रीर सङ्कों के किनारे पेढ़ नहीं देखती श्री वहाँ वे श्रपने हाथ से उन उपयुक्त बीजों को रोपती थीं। जब उनसे कोई पूछता था कि भाग ऐसा क्यों करती हैं तब वे कहती थीं कि इन रापे हुए बीजों में सब न होकर यदि दो चार मी लगजायेंगे तो समय पाकर वे अवस्य फूलें फलेंगे। अके हुए पश्चिक उनकी छाया में बैठकर ठंडे होंगे, भूखे खोग उनके फल खाकर श्रपनी बात्सा को तप्त करेंगे श्रीर पश्चिगण उनकी डालियों में बोसले बना कर रहेंगे। इससे संसार का कुछ न कुछ उपकार होहीगा, मेरा उद्देश्य विफल न होगा।" श्रहा ! क्या ही सुन्दर ग्रीर क्या ही पवित्र माव है ! जिस देश में

तब देखते थे कि उनके थके बैजों तथा मैंसों को रानी के नौकर पानी पिला रहे हैं, भीर घास काट कर खिला रहे हैं। भ्रहिल्यामाई ऐसी दयाल थीं कि कितने ही भ्रनाज लगे हुए खेत पण्चियों के ऐसी दयामयी की जन्म लेती हैं वह देश धन्य हैं ! भारतवर्प की पुराखे-ज्ञिखित पतिव्रताओं की कथा कोबल कविकल्पना ही नहीं हैं, ऋहिल्या के सदश धर्मशीला खियों के चरित्र से वह प्रमाखित हो सकती हैं।

इस दयामयी श्रिहिस्या के गर्भ से जो सन्तान उत्पन्न हुई घी, एक बार उसके खमाव की मी श्रालोचना कीजिए । श्रहिस्यावाई श्रठारह वर्ष की उन्न में विधवा हो गई। विधवा होने के कुछ ही दिन पूर्व उनके एक येटा हुम्मा जिसका नाम मालीराव रक्ता गया। वह यालपन से ही विगड़ चला। उसकी चित्तवृत्ति वरावर बुरं कामों की श्रोर लगी रहती थी। श्रनाचारी वालकों के साथ मदापन करने करते यह एकदम ज्ञानशून्य हो गया। उसे श्रपने हिवाहित की युद्धि प्राय: खुप्त सी हो गई। नशे की हालव में वह कभी कमी कैंचे दर्जे के नौकरों की भी वेंत से पीटवा था श्रीर नौकरों के हारा उन्हें श्रपमानित करवा था।

विधवा द्वाने पर ब्राह्म्या ने सव सुख त्याग कर ब्राह्मण साधुष्ठों को सेवा में अपना जीवन समर्पण कर दिया था। मालीराव माता के इस धर्माचरण में सहानुभृति प्रकट करना दूर रहा, भाँति भाँति की विश्वधार्थ डालता था। ब्राह्म्यावाई साधु, संन्यासी ब्रीए ब्राह्मणों को देवता की तरह भक्ति करती थाँ, मालीराव उनको देती दिए से देखता था। माता के भक्तिपत्रों को निकालने के लिए वह नित्य नया नया उपाय रचता था। वह ऐसा दुए था कि कभी कपड़े या जूते के भीतर विच्छू को छिपा कर ब्राह्मणों को पहनने के लिए देता था। कभी तामे या पीतल के घड़े में रुपये भर कर ब्रीए उसके भीतर एक विषधर सांप रहकर ब्राह्मण श्रीर साधुओं को उसमें

से यथेच्छ रुपया होने का मादेश देवा था। रुपया निकालते समय जब उन निरपराधियों के हाथ में सांप हँसता था तब उसके ग्रानन्द की सीमा नहीं रहती थी। पुत्र के ऐसे कृर व्यवहार से अहिल्या का कोमल हृदय विदीर्ण होता था। वे पुत्र के दुराचार से दिन रात रीया करतीं धीर सताये व्यक्तियों को यथेष्ट पुरस्कार देकर सान्त्वना ब्राक्यों से उन्हें सन्तुष्ट करने का यत्न करती थीं। अहिल्या जैसी धर्मशीला के गर्भ से जब मालीराव जैसा कुपुत्र उत्पन्न हुन्छा, तब गान्धारी के गर्भ से दुर्थोधन ब्रादि क्रुपुत्रों का जन्म होना ब्रस्ता-भाविक नहीं समभा जा सकता। अब इम प्रकृत विषय का उल्लेख करते हैं। राजा धृतराष्ट्र के छोटे भाई का नाम पाण्ड था। उनके पहली पत्नी कुन्ती के गर्भ से युधिष्ठिर, मीम और अर्जुन तथा दूसरी की माद्री के गर्भ से नकुल और सहदेव दो पुत्र उत्पन्न हुए थे। पाण्डु के पुत्र होने के कारख वे पाँचीं भाई पाण्डव के नाम से विख्यात हुए।

पाण्डु का देहान्त होने पर उनकी छोटी पत्नी साही उनके साथ सती हो। गई। कुन्सी अपने और सैतिले बेटें को साथ ले हिस्तान्पुर धृतराष्ट्र के धाश्रय में रहने लगी। गान्धारी और धृतराष्ट्र पाण्डु के बेटेंं को अपने पुत्र की भाँति प्यार करते थे। पाण्डव पाँचों माई बाहुबल और बुद्धि में दुर्योधनादिकों से बढ़े थे, इसलिए प्रजागा उन पर अधिक अनुराग रखते थे और उनकी प्रशंसा करते थे। यह दुर्योधन को बहुत बुरा लगता था। धृतराष्ट्र ज्येष्ट होने पर भी जन्मान्थ थे, इसलिए जनका राज्य पाने का अधिकार न था। यदि पाण्डु जीते होते तो वही राज्य करते, इस कारण बहुतेरी

प्रजायें कहती थीं कि पाण्डु के बेटे ही राज्य के सचे श्रधिकारी हैं। ''इससे दुर्योधन का कोध पाण्डनें पर और भी बढ़ गया था। वाल्यकाल से ही उसकी कृर बुद्धि शकुनि मामा की तरह परिवर्द्धित हो चली थी। किस तरह पाण्डवें। की मार कर वह निष्कण्टक होगा, सदा इसी चिन्ता में ह्वा रहता छा। पाण्डवें में भीम वहे विलिप्त वे स्रीर गदायुद्ध में दुर्योधन के प्रतिद्वन्द्वी थे, इसलिए सर्वी की अपेसा भीग पर उसका विशेष दंश वा । एक बार उसने गुप्त-रीति से मिठाई में विप मिला कर मीम को खिला दिया या। किन्तु ईश्वर की कृपा से भीम वच गये। इसी तरह एक बार उसने गन्थक, धीर भी इत्यादि के थांग से एक लाचागृह बनवा, कपट-कीशल से पाण्डवें की उसमें ठहरा कर आग लगवा दी थी। विशोप कर लाह के संयोग से वह वर बना था, इसलिए वह लाकागृह के नाम से प्रसिद्ध हुआ। भाग्यवशात हुर्योधन के बुरे भाशय की खबर पाकर वे लोग उस काचागृह में आग लगने के पूर्व ही भाग कर ध्रयने प्राया बचा सके। गान्धारी या धृतराष्ट्र पुत्र के कुल्यवहार के सम्बन्ध में पहले कुछ न जानते थे। पीछे जब जन्हें पुत्र के दुराचार की ख़बर ख़गी तब वे कभी **उसे** मीठी वाले से समभावे थे, कभी कोष कर डॉट डपट बतावे थे, कभी उसकी भर्त्सना करते थे, परन्तु इससे कुछ फल न होता था। ज्यों ज्यों समय वीतने लगा त्यों त्यों दुर्योधन का क्रोध पाण्डवेां पर बढ़ने लगा।

धनुनिंद्या में अर्जुन संसार भर में अग्रगण्य थे। वाणिवद्या में उनका मुकावला करने वाला उस समय कोई न था। उनका लच्य कभी व्यर्थ न होता था। लाचागृह से भाग निकलने के बाद पाण्डवें।

ने सुना कि पाध्वाल देश के राजा द्रुपद ने अपनी कन्या के ज्याह के लिए एक महासंमा करके इस बात की सर्वत्र घेषिया। की है कि इस महासभा में प्राये हुए व्यक्तियों में जो नीचे रक्खे हुए पानी में लत्त्य का प्रतिविम्ब देख कर लत्त्य वेधेगा वही चनकी परम-सुन्दरी द्रीपदी के पाने का श्रधिकारी होगा।" यह संवाद सुन कर पाण्डव-गण भेस बदल कर द्रुपद की सभामें उपिथतं हुए। उस समय प्रधान प्रधान राजा महाराजा और वीरगण सभी सभा में बैठे थे, किन्तु उन सबीं में कोई लच्य बेधने में समर्थ न हुआ। धन्त में बाह्यस-वेषधारी धर्जुन ने लच्य भेद करके द्रौपदी का लाभ किया। जे। काम चत्रिय वीरगण न कर सके उसे एक साधारण त्राक्षण ने कर डाला । यह देख भागत राजा सब क्रुड़ हो भर्जुन के साथ युद्ध करने की ख़्यत हुए। किन्तु भीम और अर्जुन के बाहुबल के आगे कोई उहर न सका। सब ने परासा हो अपने अपने घर का रास्ता लिया । इधर लच्य वेधने वाले का असली परिचय पाकर राजा द्रुपद के श्रानन्द की सीमा न रही। श्रर्जुन राजाग्रे की हरा कर द्रीपदीं की साथ ले मां के पास आये और कहा—"मां! मैं पक ' ग्रपूर्व बस्तु लाया हूँ।" कुन्ती ने समका कि कोई खाने की क्स्तु लाया होगा ! इस कारण उसने कहा-"'पाँचें भाई बाँट लो ।" • माता की ब्राज्ञा कैसे टाली जा सकती थी, पाँचीं भाई पाण्डवें ने ं द्रौपदी के साथ व्याह किया।

पाण्डल आग में जल कर मर गये, यह बात सर्वत्र ख्यात हो गई थी, किन्तु इस समय उनके जीवित रहने ग्रीर पाञ्चाल देश के राजा की वेंटी द्रीपदी के साथ व्याह करने की बात सुन कर गान्धारी ग्रीर धृतराष्ट्र बहुत प्रसन्न हुए । उन्होंने उन सवों को वहं श्रादर से इस्तिनापुर में बुलावा ग्रीर मिविष्य में जिससे दुर्योधनादि के साथ उनका कलह न वहं इस कारण राज्य वांट दिया । दुर्योधना प्राची राजधानी हित्तवापुर में ही रहे । पाण्डवों ने इन्द्रप्रस्थ नाम की नई राजधानी स्थापिव की । गहुतेरे होगों का अनुमान है कि पिरचमोत्तर प्रदेश की प्रसिद्ध नगरी दिल्ली ही किसी समय इन्द्रप्रस्थ के नाम से विख्यात था । दिल्ली का एक ग्रंश श्रव भी इन्द्रप्रस्थ शब्द का अपअंश ''इन्दरप्यग' के नाम से पुकारा जाता है।

पाण्डव मई राजधानी बसा कर उसकी शोमा धीर सब्धि बढ़ाने की चेष्टा करने लगे । उन्होंने शहर के चारों धीर ख़ृद्ध मज़्यूत किला बनवाया धीर गहरी खाई खुदवा कर शृत्रुधी के आक्रमया के मय से निश्चिन्त हुए। अच्छी अच्छी सहके वनवाई, जिनके दोनों किनारे पेड़ लगवाथे। सुन्दर वाग धीर निर्मेल जल से भरे हुए सरोवर नगर की शोमा बहाने लगे । यहे वहे विशाल भवन, देवमन्दिर, बाज़ार धीर धर्मशाला धादि स्थापित होने से राजधानी की शोमा बहुत बढ़ गई। पाण्डवीं के सद्व्यवहार से प्रसन्न होकर देश-देशान्तर के व्यवसायी लोग वहां बाकर रहने लगे। थाड़े ही दिनों में इन्द्रभक्ष ने अपनी शोमा धीर सम्बद्धि में हिस्तनापुर को जीव लिया।

पाण्डवें के वैरी दुर्योधन को यह सहन च हुग्रा।वह पाण्डवें की छन्नति देख कर मन ही मन जलने लगा।इससे भीवड़ कर उसके मन में मारीविद्वेष पैदाकरने वाली यह बात हुई िक पाण्डव पास के राजाओं को जीत कर राजासूय यज्ञ करने को उदाव हुए । अद्वितीय, परम प्रमावशाली सार्व-मीम राजा की छोड़ कोई राजासूय यज्ञ का अनुष्ठान नहीं कर सकता । इससे अन्यान्य राजाओं को अपनी हार खींकार कर सकता । इससे अन्यान्य राजाओं को अपनी हार खींकार कर सकता की प्रधीनता खींकार करनी पढ़ती है । भीम और अर्जुन ने छपने बाहुबल से युद्ध में सब राजाओं को पराजित किया । दुर्योधन इच्छा न रहते भी कुलश्रेष्ठ जान कर युधिष्ठिर की प्रधानता खींकार करने को बाध्य हुआ। । किन्तु लोग जितनी ही पाण्डवीं के बल-पराकम की बढ़ाई करने लगे उतनी ही दुर्योधन की मार्मिक पीड़ा बढ़ने लगी। किस तरह पाण्डवीं का सर्वनाश होगा, वह इसकी विन्ता करने लगा।

गान्धार देश का राजकुमार शकुनि बहुत दिनों से हस्तिनापुर में था। एक तो वह दुर्योधन का अत्यन्त समीपस्थ सम्बन्धी था, दूसरे देग्नों का स्थमाव परस्पर मिला जुला था, इसलिए दोनों में बड़ी, मैंश्री थी। दोनों एक साथ सलाह विचार करके कोई काम करते थे। साधुओं से अच्छी और दुर्जनों से बुरी ही सलाह मिलती है। शकुनि दुर्योधन को अपने दु:स्थमाव को अनुसार बुरा ही विचार दिया करता था। 'बाहुबल से पाण्डवों का जीतना सहस्र नहीं है इसलिए कपट-काशल से पाण्डवों का सर्वनाश करना चाहिए', यह दोनों ने पका विचार किया। उन दिनों राजाओं की यह एक रीति थी कि जो कोई उन्हें लड़ने या जुआ खेलने के लिए बुलाता तो वे इनकार न करते थे। इनकार करने से लोग उन्हें कायर सममते थे। जुना खेलने में शकुनि बड़ा ही प्रवीय

था। निश्चय हुआ। कि शकुनि दुर्वीघन की श्रीर वाज़ी लगा कर जुवा खेलेगा श्रीर जुने में युधिप्तिर की हराकर उनका सर्वस्व करण कर लेगा।"

दुर्योधन के धनुरोध से धृतराष्ट्र ने पाण्डवें। को इस्तिनापुर युलाकर जुटा खेलने की स्नाझा दी। जुट्टा बहुत युरा खेल है. यह जान कर भी उस समय की प्रचलित प्रया के घनुसार तथा चचा के धनुरोध से युधिष्ठिर जुळा खेलने में प्रवृत्त हुए। शकुनि उनकी अपेका जुवा खेलने में निपुण या, इसलिए वह जीतने लगा और युधिष्ठिर प्रतिवार हारने लगे । युधिष्ठिर क्रमशः जुनै में धनरत, भूपस, हाथी, घोड़े, रस, कोशागार, यहां तक कि भाई स्पार द्रीपदी पर्यन्त का हार गये। पीछे उन्होंने ध्रपने ही का वाज़ी रक्खा, उस दफ़ें भी शकुनि ही की जीत हुई । दुर्योधन स्रीर उसके भाई युधिष्टिर की पराजित देख नाना प्रकार के मर्मभेदी **उपहास-वाक्यों से उनका जी दुखाने लगे । दुर्योधनं की श्राहा से उसका पापिष्ट साई दु:शासन द्रीपदी को अन्त:पुर से केश पकड़** कर हो द्याया ग्रीर भरी सभा में उसके वदन पर से वरजारी कपड़ा र्सीचने लगा। समारक्ष धार्मिक गर्हों ने उसके इस कुन्यवद्वार से मर्माहत होकर सिर नीचा कर लिया । युधिष्टिर तो अपनी इच्छा से श्रपने और द्रौपदी को जुबे में हार चुके थे। किसी के हाथ विके हुए दास श्रीर दासी के ऊपर खामी का सब अधिकार है, यह सोच

कर ने दु:शासन को इस धनीति पर कुछ न बोले, चुपचाप बैठे रहे। भारतवर्ष के बढ़े बढ़े सम्झान्त चत्रिय राजा महाराजा भी उस सभा में बैठे थे, परन्तु थक धनला को इस प्रकार धपमानित होते देख कर किसी ने कुछ न कहा । जान पड़ता है इसी पाप से चित्रयों का प्रकृत महत्त्व ग्रब इस मारत-भृमि से बिदा हो कर सात समुद्र के पार चला गया।

जब राजसभा में ये सब बातें हो रही बीं तब गान्धारी महल के भीतर बीं ! वे दुर्थोधन के इस अत्याचार की बात सुन कर बड़ी दुखी हुईं और तुरन्त उन्होंने सब समाचार धृतराष्ट्र से जाकर कहा ! धृतराष्ट्र ने राजसभा में लाकर दुर्योधन को ख़ूब फटकारा और द्रीपदी को भधुर बाक्यों से सान्त्वना देकर दासील-बन्धन से छुड़ा दिया । युधिष्ठिर और उनके भाई, धृतराष्ट्र की फृपा से दासल से छुटकारा पाकर इन्द्रप्रस्थ को गये ।

दुर्वेघिन श्रीर शकुनि श्रादि दुएगर्खों ने द्वाथ में श्राये हुए वैरियों को इस प्रकार निकलते देख नहे दुखी हुए। उनके चीम की सीमा न रही । उन्होंने घृतराष्ट्र के पास जाकर फिर पाण्डवें। की युलाने श्रीर उनको जुवा खेलने के लिए आज्ञा देने के निमित्त प्रार्थना की । स्वभावतः धर्मभीर श्रीर पाण्डवीं के प्रति स्तेहपरायण होने पर भी धृतराष्ट्र ने हृदय की दुर्वेलता के कारण उनकी प्रार्थना स्वीकार करके युधिष्ठिर की फिर जुवा खेलने के लिए बुलाया। यह जान कर गान्धारी की सर्मान्तिक पीढ़ा हुई। पतिमक्तिपरायगा ष्टोकर भी उसने खामी को इस प्रकार पापकर्म में सहायता करते देख वह ग्रत्यन्त दुखी होकर पित के पास जाकर वोली--"महा-राज, यह ब्राप क्या कर रहे हैं ? पुत्रस्तेह से विचारशून्य होकर म्राप कुलचयकारी कार्य में क्यों प्रवृत्त हुए हैं ? दुर्योधन हमारे वश में कुलकुठार उत्पन्न हुआ है। उसकी बात में पढ़ कर आप

स्रपना श्रनिष्ट न करें। पुत्र ही को पिता की बात माननी चाहिए। यही शास्त्र की भ्राज़ा है। तो भ्राप उसकी बात क्यों सुनते हैं? यदि भ्राप मेरा कहा माने तो दुर्शोधन को लाग दें, नहीं तो मारी विपद खढ़ी होगी।"

धर्मपयदर्शिती सहधिमाँची की बाद सुन कर शृतराष्ट्र बोले— ''प्रिये ! यदि विधाता को वहीं करना होगा तो उसे कौन रोक सकेगा । माबो को कोई मिटा नहीं सकता । दुर्योधनादिक जो चाहें करें, पाण्डवें के साथ फिर उनकी जुनेबाज़ी चले ।''

धृतराष्ट्र की आहा से फिर जुना आरम्भ हुआ। दुए राजुनि ने शुविष्ठिर के निकट यह प्रस्तान किया कि इस बार जुने में हम आपसे हारे तो शृगळाला पहन कर इस बारह वर्ष ननवास और एक वर्ष श्रहातवास करेंगे। श्रगर इस जीतेंगे तो द्रीपदी सिहत आप पाँची भाइयों को जसी तरह तेरह वर्ष बिताना होगा। तेरह वर्ष बीतने पर फिर आप श्रपना राज्य पार्षेगे। बाइप, इस आप यही बाज़ी रखकर इस बार जुना खेळें।"

सभास्य सब लोग इस अयङ्कर बाज़ी की बात सुनकर बहुत दुखी हुए; किन्तु युविष्ठिर महाराज लोकलजा में पड़कर उस पद्य को स्वीकार कर जुवा खेलने लगे।

इस बार मी शक्कान ही की जीत हुई। पाण्डवगण पूर्व प्रतिक्षा के अनुसार राजकीय चल और अल-शल परित्राग कर मृगचर्मी पहन संन्यासी की माँति सम्पूर्ण शरीर में अस्म लगा कर जङ्गल को रवाना हुए। पतिज्ञता द्रौपदी मी उनके साथ गई। दुर्योधन और उसके और माई पाण्डवें। को उस अवस्था में देखकर उनका तीव्र वपहास करने लगे। यह देखकर हिस्तनापुरवासी समभ गये कि दुर्योधन ने श्रपनी दुर्वृद्धि से जे। निरोध रूपी श्राग जलाई है उससे कुरुवंश शीव्र ही जल कर अस्म होगा।

तेरह वर्ष वीत जाने पर पाण्डव अपनी राजधानी की लीट ष्ट्राये थ्रीर पूर्व प्रतिज्ञा के अनुसार फिर अपना राज्यांश पाने के लिए श्रीकृष्ण को दूत रूप में इस्तिनापुर भेजा। किन्तु दुर्योधन ने .''सूच्यमं नैव दास्यामि विना युद्धेन केशव" श्रर्थात् विना युद्ध के सुई के श्रप्रभाग बराबर भी भूमि न टूँगा प्रतिज्ञा की। यह सुनकर धृतराष्ट्र ने गान्धारी को अन्तःपुर से सभा में युता कर दुराचारी पुत्र को उपदेश देने कहा। मारे खेद श्रीर कोध के गान्धारी के सुँह से कोई शब्द न निकलता था। उन्होंने दुर्योधन से कुछ कहने के पूर्व स्वामी से कहा—''महाराज ! यह जो भारी टंटा खड़ा हुआ है, इसके लिए आप ही पूरे बदनाम होंगे। आप दुर्योधन का दुष्टाशय जान कर भी उसके मतातुसार चलते हैं। दुर्योधन क्रांध श्रीर लोभ के ऐसा वशीभृत हो रहा है कि ग्राप उसे ग्रव बलपूर्वक भी दबाना चाहेंगे तें। वह न दवेगा। मूर्ल और दुरात्मा के हाथ में राज्य का भार देने से जो फल होता है वह आप इस समय भाग रहे हैं।"

इसके अनन्तर दुर्घोवन से कहा—''मैं तुम्हारे भविष्य कल्याख के लिए जो बात तुमसे कहती हूँ, वह तुम ध्यान देकर सुनो । तुम्हारे पिता श्रीर भीष्म, द्रोखाचार्य आदि वार्मिक व्यक्तियों ने जो क्कंक्ष तुमसे कहा है, उसका तुम पालन करो । न्यायपूर्वक कार्ये ब जो से तुम सुखी होने । यह तुम निरचय जानो । श्रजितेन्द्रिय, विषयज्ञेत्व्य मनुष्य कभी चिरकाल तक राज्य नहीं भाग सकता। ज्ञा मनुष्य न्यायी श्रीर सदाचारी है वही सुख-खच्छन्दता-पूर्वक राज्य भागता है।

वत्स ! खर्य श्रीकृष्ण पाण्डवों के दूत वनकर तुम्हारे यहाँ श्राये हैं। तुम उनकी बात मान लो। उनके प्रसन्न होने से तुम्हारे दोनों दलों का कल्याया होगा। तुल्हारे पिता और भीष्माचार्य भ्रांदि धार्मिक व्यक्ति विरोध से डर कर पाण्डवों के राज्य का उचित श्रंश देने को सम्मत हैं। राज्य का आधा हिस्सा तम लोगों के लिए काफ़ी है। तुसने जा तेरह वर्ष तक पाण्डवों की इतनी दुर्दशा की है, उस पर खेद प्रकाश करना ग्रीर उन्हें सुसी करना तुम्हारा परम कर्तव्य है। तुमने अपनी भूल से जो यह समक्त रक्ला है कि भीष्म श्रीर द्रोखाचार्य श्रादि वीरगण तुम्हारे लिए प्रायपण से युद्ध करेंगे, यह कभी न होगा । क्योंकि वे लोग जानते हैं कि इस राज्य पर तुन्हारा धीर पाण्डवें का समान अधिकार है। यह जान कर ही वे लोग तुम दोनों पर धरावर स्तेह-भाव रखते हैं। उन जोगों को पूरा विश्वास है कि पाण्डव तुम सबों की ध्रपेचा विशेष धर्मात्मा हैं। मान लो, तुम्हारे अन्न से प्रतिपालित होने के कारण वे लोग तुम्हारी ओर से लड़कर युद्ध में मर मिटेंगे; पर ता भी धार्मिक युधिष्ठिर के अपर वे कदापि अखप्रहार न करेंगे। बेटे ! लोमान्ध मनुष्य कमी इष्टसिद्धि को प्राप्त नहीं हो सकते। तुम लोम त्याग कर शान्त मान धारख करे। 17

पत्थर पर बीज नहीं जसते । दुर्थोधन के कठोर हृदय पर माता
 का उपदेश न लगा । उसने माता के सदुपदेश पर ध्यान न दिया ।

वह अपने संकल्प पर अचल बनारहा। जब लोगों का दुरादिन त्र्याता है तब वे हित की बात नहीं सुनते। दुर्योधन से सब लोग कह कर बक गये पर उसने किसी की बात न मानी। युद्ध किसी के रोके न रुका। दोनों पच अपने बन्धु-बान्धव श्रीर चतुरिह्मशी सेना साथ ले घोर संप्राम करने को उद्यत हुए। दानाग्नि से जिस सरह घना जङ्गल जल कर भस्म हो जाता है उसी तरह घटारह दिन की भयानक लड़ाई में कीरव और पाण्डवों की श्रसंख्य सेना लड़ कर कट मरी । कितने ही सुकुमार राजकुमार कितने ही बलिप्ट युवा श्रीर कितने ही बूढ़े वीर उस समराग्नि में जल सरे। पुत्रहीना भाता और पितहीना कियों के आर्चनाद से अन्तःपुर भर गया। चारों भ्रोर हाहाकार मच गया। दूत प्रतिदिन युद्ध की घटना गान्धारी श्रीर धृतराष्ट्र के पास ब्राकर विस्तारपूर्वक वर्णन कर कहता था—"धाज की लुड़ाई में आपके पैत्र मारे गये." "धाज भ्रापकी एक मात्र बेटी विधवा हो गई।? "ब्राज आपके पुत्र का हृदय फाड़ करके भीम ने उसका कथिर पान किया।" इस प्रकार रोज़ रोज़ की ख़बर गान्धारी के पास पहुँचने लगी। युद्ध का परि-गाम ऐसा ही होगा, यह बात वह पहले ही से जानती थी, इस लिए वह इन शोकसंवादों की सुनने के लिए हृदय की दृढ़ किये थी। किन्तु धर्महान से धैर्य्य धारण करने पर भी पुत्रस्तेह के निकट धीरता, सहिष्णुता श्रादि सभी गुग्र छुप्त हो जाते हैं। परन्तु उस अवस्था में भी उनके अधार्यिक पुत्र विजयी हो, यह भावना कभी उनके मन में उत्पन्न न हुई। उनके पुत्रों की बुद्धि अच्छी हो, वे धर्मपरायण हों, यही वे ईश्वर से निता प्रार्थना करती थीं।

जब राणभूमि में जाने के पूर्व उनके वेटे उन्हें प्रणाम करके विदा माँगने द्याते थे तव वे यही कहती खीं—''बेटे ! यतो धर्मस्तते। जय:।'' जहाँ धर्म वहीं जय। यहाँ गान्धारी की धर्मपरायणता विशेष प्रशंसनीय हैं।

युद्ध समाप्त सुम्रा । पाण्डव पाँचों भाई वच गये । किन्तु उनके पुत्र, ध्रीर कितने ही म्रात्मीय वन्धु-वान्यवगण मारे गये। दुर्यीधन म्रादि सा भाई युद्ध में इत हुए। दोनों दलों की ग्रसंख्य सेनायें इत हुई'। युद्धचेत्र में रक्त की धारा वह चलीा सारी रख-भूमि रुण्ड-मुण्डमयी हो गई। उस युद्ध-श्रत के भयानक दृश्य का वर्धन नहीं हो सकता। युद्ध करना राचस का कार्य्य है। इसलिए उस श्रमुर कार्य में पड़कर कोई धर्मानुसार चलना चाहेगा, यह नहीं हो सकता। बहुत धच कर चलने पर भी जुछ न जुछ ग्रथर्म हो ही जाता है। इसलिए पाण्डवगर्गों ने स्वभावतः धर्मभीरु होने पर भी युद्ध में प्रवृत्त होकर किसी किसी स्थल में लाचारी अधर्म का आश्रय **लिया था**। उन्होंने कपट-युद्ध में कीरवदल के प्रधान प्रधान चीर पुरुषों को श्रीर कुरुराज दुर्योधन को मारा था । पाण्डवें के कप-टाचार की बात सुनकर गान्धारी की मर्मान्तिक कट हुआ। उन्होंने भ्रधर्माचरण के कारण पाण्डवों पर क्रोध प्रकाश करके उन्हें धिकारा। किन्तु जब उनको यह ज्ञात हुआ कि उनके पुत्र ही सब ग्रनर्थ के मूल थे, पहले वहीं कपटयुद्ध में प्रवृत्त हुए थे तब वे क्रोध त्याग कर पाण्डवों को पूर्ववत् स्तेइ-मरी दृष्टि से देखने लगीं।

गान्धारी ने विवाह होने के पूर्व ही से अपनी आँख पर पट्टी बांघ ली थी। पुत्र-कन्या के जन्म होने पर मी चन्होंने पट्टी खोल सुख से विञ्चत किया या उस सुख से वे आप भी विश्वत हो रहीं । किन्तु युद्ध समाप्त होने पर उन्होंने एक वार मृत पुत्रों की देखनाचाहा। वह दश्य सुख का नहीं या, ऋांख रहते भी जे। दृश्य उनके पति न देख सकते, जो दृश्य उनके पति के सुखानुभव का विषय न या, उसका देखना उन्होंने बुरा न समभा। इसलिए वे झाँख की पट्टो खोल कर विधवा बेटी श्रीर पतोहश्रों को साझ

त्ते युद्धक्तेत्र देखने गई^{*}। श्रीकृष्ण श्रीर युधिष्ठिर-प्रशृति श्रनेक व्यक्ति उनके साथ गये । श्रीफृष्णाचन्द्र ने कुरु-पाण्डव के युद्ध में खर्य ग्रह्म-धारगा न किया या । उन्होंने केवल अर्जुन के सारिष्ट का काम किया था। किन्तु सच्ची बात यह है कि उन्हीं के ब्रुद्धि-कौशल से पाण्डवों ने विजयलाम किया । गान्धारी वह बात जानती थी। इसलिए पाण्डवों से कुछ न कह कर चन्होंने श्रीकृष्णजी के निकट प्रपनी सर्मवेदना प्रकट की। रणचेत्र का दृश्य ग्रायन्त भयदूर या ! श्रायन्त मर्मभेदी या ! चारों ग्रेर ग्रसंख्य हवाहत सेनाश्रों की लाशें पड़ी थीं। किसी का प्रङ्ग दो दुकड़ा होकर कटा या; किसी के हाथ पैर कटे थे: किसी का सिर थड़ से अलग पड़ा था; कितने ही हतभाग्य तब भी जीते हुए छंटपटा रहे थे। उनमें कोई मारे यन्त्रणा के चिछा रहा था, कोई मारे प्यास के "पानी, पानी" कह कर कराह रहा था, कोई माँ, बाप, स्त्री ऋौर बेटे की बात याद करके रा रहा था। सैनिकों की लाश के साथ साथ मरे हुए घोड़े हाथियों के शरीर जहाँ तहाँ टीले की तरह पड़े थे। कहीं कहीं बहु की कीचड़ मच गई थी,

विकट दुर्गन्ध प्राता या कि उस जगह किसका सामर्थ्य जो चग

भर भी खड़ा रह सके। भुण्ड के भुण्ड मांसभन्ती पशु-पन्ती रण-चेत्र में प्राकर उद्घास से मुदों का मांस नीच नीच कर खा रहे थे। समरशायी वीर-गर्शों के अस्त्र गस्त्र जहाँ तहाँ विखरे पड़े थे। टूटे सुए रथें की अधिकता से रख-भूमि का मार्ग मिलना कठिन था। गान्धारी ने एक बार चारों ओर देखा, एक दासी उनके मृत-व्यक्तियों धीर उनकी अनुगामिनी कुरुनारियों का परिचय देने लगी। रख-भूमि का वह भयानक दृश्य देखकर गान्धारी का हृदय विदीर्ण हुआ। वे श्रीकृष्ण को पुकार कर वीर्ली—''हे कृष्ण! हाय ! यह देखा, मेरी पताह सब धनाधिनी की भांति खुले केश, रोती हुई, अपने अपने पति, पुत्र, पिता और भाई का समर्य करके जनकी लाश व्याकुल होकर खे।जती फिरती हैं। सारा मैदान पुत्र-हीन माता श्रीर पतिहीना लियां से भरा है। यह देखेा, गीध सब वीर पुरुपों की लोघों की घसीट कर ग्रानन्द से उनका मांस नोच ने।च कर खा रहे हैं। जो लोग किसी समय बन्दीजने। के ग़ुँह से ध्यपना सुयश ध्रीर प्रताप सुनकर पुलकित होते थे वे ध्याज शृगाली का मीषण चीत्कार सुन रहे हैं। यह देखे। मेरी पताहुओं के कोमल मुखकमल कुन्हला गये हैं। उनकी आँसू भरी आँखें घूम रही हैं। कितनी ही माँति भाँति के विलाम करके रे। रही हैं। कितनी ही बार वार दीर्घनि:श्वास लेकर शोक से अचेत ही पड़ी हैं। कोई पति की लाश की छाती से लिपटा रही है। कोई पति के पैर को आंसुओं से थे। रही है। कोई पति के कटे मूँड को पाकर

उसका शरीर खोज रही है। मैं जिघर देखती हूँ उधर ही अपने बेटे, पोते, भाई ग्रीर भतीजों की जारों दिखाई देती हैं। जान पड़ता है, मैंने पूर्व जन्म में कोई घोर पाप किया था नहीं तो स्राज सुभको यह दृश्य क्यों देखना पढ़ता।" इस प्रकार विलाप करते करते गान्धारी वहाँ गई जहां दुर्योधन की स्नाश पढ़ी थी। वह उससे लिपट कर "हा पुत्र ! हा दुर्योधन ! कहकर ख़ूब उचस्वर से रीने लगी। पीछे उसने श्रीकृष्ण से कहा-"इस परिवारनाशक युद्ध जारी होने के समय दुर्थोधन ने विजय के लिए मुम्ससे श्राशीर्वाद माँगा था।" मैंने कहा—"वत्स ! जहाँ धर्म वहीं जय।" जब तुम युद्ध से मुँह नहीं मोड़ते तब निश्चय है कि तुम वीरगति को प्राप्त होगे। ''यह बात बोलते समय, युद्ध में पुत्र निहत होगा''. इसका ज़रा भी शोक ग्रुभको न हुआ। किन्तु अभी पुत्र-पात्र-बन्धु-बान्धवेां से विद्दीन महाराज (धृतराष्ट्र) की मविष्य दशा सोच कर मैं शोक से ज्याकुल हो रही हूँ। यह देखे। दुर्योधन की स्त्री मेरी बढ़ी पते हु सिर पीट पीट कर कभी पति का, कभी बेटे का सुँह निहार रही है। मेरा बेटा अधर्मी है-इसमें सन्देह नहीं, किन्त पहले उसने जो कुछ किया हो, युद्ध में उसने चित्रयधर्म का पालन किया। वह अकेला पाण्डवें के साथ सम्मुख युद्ध में न डरा। यदि शास्त्र सत्य है तो वह अवश्य ही स्वर्गनोक का अधिकारी होगा।"

भगवान् ! मेरी पतोहुओं की दशा देख कर अभे अर्भान्तिक कष्ट हो रहा है। मेरे पुत्र विकर्ण की अुवती की की और देखे।। वह गिद्ध और शृगाल ग्रादि दुष्ट जन्तुओं के आक्रमण से स्वामी की देहरत्ता के लिए बारम्बार चेष्टा कर रही है परन्तु किसी तरह

कृतकार्यं नहीं होती। ग्रहा ! मेरी लाड़ली वेटी दु:शला ग्रपने पति जयद्रथ का मृत शरीर पाकर उसके मस्तक की खोज में उन्मादिनी की भांति इधर उधर दौढ़ रही है। साता होकर यह हृदय-विदारक दृश्य देखने से मेरे मन में जो कुछ वेदना हो रही है वह क्या कहकर तुम्हें समभाऊँ ? हा ! तुम्हारे मागिनेय श्रमिमन्यु की साश लहू से लयपत्र होकर देखों सामने पड़ी है। मरने पर भी उसके मुँ ह की शोभा बनी है। हतभागिनी उत्तरा कवच हटा कर उसके वाखिवद्ध शरीर की एकटिए से देख रही है। हाय ! हाय! भ्राचार्य की पत्नी कृपी पति-शोक से ज्याकुल होकर देखे। फिस दीन भाव से सिर नीचा किये यैठी है । सामगायकगण आग लाकर विधिपूर्वक आचार्य की चिता प्रस्तुत कर रहे हैं। बेटे, पाते, भाई भतीजे क्रीर सम्बन्धियों की युद्ध में निइत देख कर में श्रव किसी तरह धैर्य धारख नहीं कर सकती। हा दैव ! क्या सुक्तको यही सब दृश्य दिखाने के ब्रिए जिला रक्खा था ?"

गान्धारी इस प्रकार विलाप करते करते मूर्छित हो गिर पड़ी धीर कुछ काल के बाद रिस अरे खर में बेल्ली—''फुजा ! मैंने महास्ताओं के मुँह से सुना है कि तुम नारायण हो। किन्तु जब तुम नर-रेह धारण करके मनुष्य की मांवि पाप-पुण्य का भाग ले रहे हो तब तुमको भी मनुष्यजन्म का मुख-दुख मोगाना पड़ेगा! तुम जैसे शास्त्रक, वाक्यविशास्त्र और पराक्रमी हो; तुम्हारे जितना वाहुबल और बुद्धिबल है, उससे यदि तुम और भी एक शार निरुद्धल मात से यह करते ते तुम कुरू-पाण्डवों के युद्ध को रोक सकते ये; यह मुक्ते विशास होता है। किन्तु तुम उपेना करके

निरचेष्ट थे, युद्ध रोकने का तुमने कुछ विशेष यहा न किया। यहि तुम युद्धनिवारण न कर सके ते किसी पच का महश्च न करना ही तुम्हारे लिए उचित था। तुमने युद्ध में हथियार न लिया यह सच है, किन्तु तुम्हारा मन्त्र अस की अपेचा भी सहस्रगुण मर्थकर कार्य कर चुका। मेरे वेटी को अधर्माचारी समम्म कर यदि तुमने उन्हें त्याग दिया ते पाण्डवीं ने जिस दिन कपट्युद्ध में भीवम को धराशायी किया था उस दिन उन्हें क्यों नहीं त्याग दिया शे प्रधर्म की आश्रय देना पाप है, उसका फल क्रेश तुन्हें भी अवश्य मेगाना होगा। तुन्हारे भी वेटे, पोते और बन्ध-बन्धवगण इसी तरह झाति-विवाद से नष्ट होंगे। कुरुवंश की विधवायें आज जिस तरह विलाप कर रही हैं, तुन्हारे कुल की स्त्रियाँ भी इसी तरह बन्ध-बन्धवां के शोक में पढ़ कर विजाप करेंगी।"

श्रीष्ठश्या ने मुस्कुरा कर कहा—"देवि! श्रापने जो वात कही है, मैं बहुत दिन पूर्व ही से उसके लिए तैयार हूँ। जो कार्य मेरे अवश्य सन्पादनीय हैं आपने श्रामी वहीं कहे हैं।"

इस प्रकार क्रुक्चित्र का युद्ध समाप्त हुआ । पाण्डवों ने निक्कण्टक राज्य पाया । उन्होंने गान्यारी स्रीर धृतराष्ट्र को भिक्त स्रीर सेवा द्वारा प्रसन्न किया । वे दोनों भी क्रमशः शोक दुःख भृत कर पाण्डवों को पुत्रवत् समक्षकर उन पर स्तेह करने लगे। पाण्डवों के सद्व्यवहार से उनको कुछ कष्ट न रहा। किन्तु उनके लिए शान्ति दुर्लभ थी। इस्तिनापुर श्मशान की माँति सुनसान रीख पड़ता था। पतिपुत्रहीना स्त्रियों के रोने चिद्याने से वे दिन रात स्वाकुल रहते थे। पुत्रवर्षों का स्मरण उन दोनों के शोकार्त हृदय को

दग्ध करता ही रहता था। त्राख़िर उन्होंने वन में निवास करके तपस्या से जीवन का शेप भाग विवाने का सङ्कल्प किया।

पाण्डवों से सलाह ले गान्धारी श्रीर धृतराष्ट्र गङ्गा के किनारे एक सुन्दर कुटो बना कर रहने लगे। वहाँ वे यह का श्रद्धान, वेदपाठ का श्रवण और शास्त्रचिन्ता से शान्तिपूर्वक समय विताने लगे। धर्मात्मा युधिष्ठिर सदा उनकी खोज ख़बर लिया करते श्रीर कभी कभी उनके आश्रम में जाकर उन्हें देख आते थे। एक दिन घृतराष्ट्र जब यह समाप्त कर चुके वन पुरोहित उस यहाँय धाग को निर्जन वन में फेंक कर अपने अपने स्थान की गये। कमशः वह म्राग सूखी लकड़ी में लग कर चारों श्रोर फैल गई। उस समय गान्धारी और धृतराष्ट्र कुटी में वैठे थे। अकस्मात् उन्हें आग की चटचटाहट और आश्रमवासियों का आर्त्तनाद सुन पड़ा। बात की बात में आग ने मयानक रूप धारख कर कुटी की चारों श्रीर से घेर लिया। "अन रका नहीं"। भागी, भागी," यह शब्द वार बार डनके कान में आने लगा। धृतराष्ट्र ने गान्धारी से कहा-"प्रियतमे ! तुम श्रव श्रपनी श्रांख की पट्टी खेखी, मार्ग सूभ्र पड़ते ही श्रनायास यहाँ से भाग सकोगो। मुफ्तको साथ ले चलने से तुम्हारे जाने में ज्याचात होगा । तुम माग कर श्रपना प्राय वचाग्री; मेरे लिए कुछ चिन्ता न करो।"

गान्धारी ने कहा—"श्रापने इतने दिन बाद यह कैसा श्रादेश किया ? किस सुख की आशा से मैं आपको छोड़ कर अपना प्राय बचाऊँगी ? श्राहए, एक दिन हम आप आग को साची रख कर दाम्पत्यसम्बन्ध में बद्ध हुए थे, श्राज उसी ग्राग में जीवन त्याग

कर हम दोनों सदा के लिए शान्तिलाम करें।" यह कह कर गान्धारी पति के शरीर से लिपट गई और उसी अवस्था में दोनों श्राग में

जल कर भस्मीभृत हो गये।

चौधा ग्राख्यान

सावित्री *****नद्वसाग ग्रीर विषाशा नदी के सध्य का प्रदेश

स्व क्षेत्र पूर्वकाल में मद्रदेश के नाम से विख्यात था। िकसी *****
समय इस मद्रदेश में अन्धपित नाम के एक राजा राज्य करते थे। राजा अन्धपित जैसे सत्यवादी थे,

राज्य करते थे। राजा अरमपित जैसे सत्यवादी थे, वैसे ही जितेन्द्रिय और ह्याल थे। उनकी पटरानी मालवी भी रूप-

गुण में सब प्रकार उनके अनुरूप थी। उन दोनों के अच्छे गुण-शील के कारण प्रजा उन्हें अपने माँ-वाप के बरावर मानती थी।

राजा भ्रम्थपति की राजधानी श्रन्न, धन, परिजन श्रीर भोग विज्ञास की बस्तुओं से परिपूर्व थी। पर उनके कीई सन्वान न थी, इस कारण उन दोनों पतिपत्नी का हृदय सदा डिट्टिग रहता था।

पश्चात् उन दोनों ने सन्तान की इच्छा से इन्द्रिय और सन को रोक कर कई वर्ष सावित्री देवी की आराधना की । अन्त में देवी की छुपा से उन्होंने एक अनुपस कन्यारल लास किया। सावित्री देवी

कुपा सं उन्होंने एक अनुपम कन्यात्व्र लाम किया। सावित्री द्वा की दया से प्राप्त होने के कारण उस कन्या का नाम सावित्री रक्ता। सावित्री शुक्रपच की शशिकला की माँति दिन दिन बढ़ने

लगी। क्रमशः उसने थौनन की सीमा में पैर रक्का। युवत्व प्राप्त होने के कारण उसके अङ्ग-प्रत्यङ्ग की शोमा और मी बढ़ गई। वह अपने रूपलावण्य से रवि, रन्भा की भी लजाने लगी। उसे वार वार देखकर भी लोगों के नयन उप्त न होते थे।

वसन्त का आगम होते ही मद्रदेश ने अत्यन्त रमयीय शोभा धारण की । तरखतागण नये पछवों से सुशोमित हुए, वनभूमि जङ्गली फूलों के सुगन्य से आमोदित हुई । आम की मंजरी पर मुँढ के मुँढ मोरे गूँजने लगे । कोयलें पञ्चमराग अलापने लगीं। राजा अस्वपति राजकार्य से छुट्टी पाकर अपराह को विश्राम के हेतु अन्तःपुर में गये। सौम होते ही सारा महस्र असंस्य दीप-माला से जगमगा उठा । देवमन्दिरों से शंख और घण्टाध्विन के साम्युविचपाठ सुनाई हेने लगा । भूप से समस्य राजभवन सुगन्धित हो किया।

चिन्ध्यावन्दन के अनन्तर राजा महल के सीतर एक पर में बैठें। एक दासी पंक्षी लेकर उनको भरूलने सुगी । रानी उनके समीप ही एक दूसरे आसन पर बैठकर फूल की माला गूँ अने सुगी । राजा ने रानी से कहा — "आज सावित्री यहाँ क्यों दिखाई नहीं देती ? श्रीर दिन दरवार से मेरे आने के पूर्व ही वह मेरे पैर धुलाने के लिए जल लेकर सड़ी रहती थी । आज इतनी देर मुक्को यहाँ आये हुई; सावित्री अब तक मेरे पास न आई इसका कारण क्या ?"

रानी ने कहा-- "सहाराज ! कल सावित्री के कल्याण्यात का उद्यापन होगा, इसी से आज वह पूजा करने के लिए देवमन्दिर में गई है। जान पड़ता है, सार्यकालिक हवन देखने की इच्छा से अब तक वहाँ ठहरी है । किन्तु आप जी प्रतिदिन इस समय भीतर द्याते हैं, लाह उसे मालूम है, इसलिए वह द्याने में विसम्य न करेगी प्रव स्नाती हो होगी।"

साबिजी दिल दिल दुवली होती जाती है । दुव वसे रोकती क्यों नहीं ?" रानी—"मैं रोकने से वाऴ नहीं खाती। किन्तु धर्मकार्थ के फतुतान में वह मेरी कही नहीं सुनती। मना करने पर वह मेरी

राता—"क्या उसने फिर कोई नया जब ठाना है ? हाल ही में यह एक व्रत का उद्यापन कर जुकी है ! उपवास करते करते

पविव्रता ।

803

चाठ का ज्वर नहीं देती। किन्तु उसका हुँ इ ऐसा उदास है। जात है, उसके फॉसू अरे नेजों से ऐसी अधीरता व्यक्त होने सगती है जिसे देखकर मेरा चिक्त स्थित गहीं रहता। में उससे कर देती हूँ,

बेटी ! की तुम्हें बज्जा लगे, करे। ।" एक बाद में बीर देखती हूँ कि वजबास करने हो से साथित्री का खारूब ठीक रहता है। तप-अर्थों से हो वह जज्जी रहती है । ज़ताराधन के समय वचलान

के बाद खुले केश से साचार देवी की बरह उसकी जैसी शोभा देख पढ़ती है, वैसी शोभा शृङ्गार करने पर भी में कभी किसी की नहीं देखती।

राजा "सेरें जैदी सावित्रों वपस्तिनों हैं । चनित्राधों की प्रमेण नास्त्रधी का लच्च ही नसमें अधिक देख पहता है। तिसं व्यक्ति में चानवर्ष की साव साव नास्त्रध्यमें भी सुद्ध कुछ होगा, वहीं इसके वरपुष्ठ कर होगा।"

रानी—"आज मैंने पहले ही से सोच स्वका मा कि आप से इस विषय में कुछ निवेहन कहनी है। अच्छा हजा कि आप से इस विषय में कुछ निवेहन कहनी है। अच्छा हजा कि आप से इस विषय में कुछ निवेहन कहनी है। अच्छा हजा कि आप से दर्श

सावित्री के व्याह की बात चलाई ! सावित्री अब व्याहने योग्य हुई ! उसके व्याह की वातचीत से श्राप निश्चिन्त होकर क्यों बैठे हैं ?"

राजा—''मैं निश्चिन्त नहीं हूँ । किन्तु सावित्री के योग्य सर्व-गुणी वर मिलना कठिन है। हम लोगों के सम्बन्ध योग्य कुल का अभाव नहीं है, किन्तु कोई अब तक सावित्रो की वधू रूप में महण करने का प्रस्ताव नहीं करता। तुसने इस पर सस्य किया है या नहीं, यह मैं नहीं कह सकता । मैंने अच्छी तरह देखा है कि नवयुषक राजकुमार सावित्री की ग्रेगर साभिजाप दृष्टि से देखना ती दूर रहा, उसके सुँह की थ्रोर देखने का भी साहस नहीं करते। सावित्री को देख कर कितने ही राजकुमार उसे भक्तिपूर्वक प्रधाम करके चले जाते हैं।"

रानी-- ''ग्रापका कहना बहुत ठीक है; किन्तु सावित्री के उपयुक्त वर न मिले ते। क्या वह अमारी ही रहेगी ? प्रव उसे किसी वर के हाथ सींप देना ही उचित है।"

राजा--''तुम इसके लिए चिन्ता मत करो । मैंने इसका ज्याय

सोच लिया है। मैं सावित्री ही के ऊपर उसके पतिनिर्वाचन का भार देँगा।"

रानी-- "यह कैसी बात ग्राप कह रहे हैं ? हम ग्राप उसके माता-पिता होकर उसके उपयुक्त वर स्थिर नहीं कर सके। वह वेचारी तो एक अज्ञान वालिका है । वह आप ही अपने पति का निश्चय कैसे कर सकेगी ?"

राजा-"दूसरी कुमारिका होती तो मैं ऐसी बात न कहता। सावित्रो जैसी बुद्धिमती. सुशीला भीर धर्मपरायगा है इससे पतिवरण करने का भार उसके कपर देना प्रयुक्त
न होगा। सावित्री अब सवानी हुई, यदि इस उसके लिए वर
ठींक करें और वह उसे पसन्द न हो तो उसके मन में वहा दु:ख
होगा, उसके साथ हम लोग भी हुखी होंगे। अगर सावित्री अपनी
पसन्द से पित चुनेगों तो किसी के मन में कुछ दु:ख न होगा।
दुम यह निश्चय जानो, गङ्गा महासगुद्ध को छोड़ कर चुद्र जाताय
में कभी प्रवेश नहीं करती। वह जब आत्मसमर्पक करेगी, महासमुद्र ही में। सावित्री कभी अवेग्य वर को खीकार न करेगी १
यदि दैववोग से उसका पति गुक्यों से उससे कुछ न्यून भी होगा
तो जैसे पारस मिक के स्पर्य से लोहा भी सीना वन जाता है वैसे
ही वह भी गुज्यान हो जायगा।
रानी—''आपकी जो इच्छा हो, करें।''

इसी समय किसी के न्युर की मन्द मन्द मधुर व्यति सुनाई देने लगी। रानी ने कहा— "महाराज! यह व्यापकी सावित्री का रही है।" रानी की वाद ख़तम होते न होते सखी को साथ लिये सावित्री कर घर में पहुँच गई। सावित्री के वाद ख़ुले से, ललाट में चन्दन लगा था, कण्ठ में फूल की माला थी, चसन्दी रङ्ग की सारी पहने थी। उसके उपवास से सिन्यस्थ के उपर दीपक की सारी पहने थी। उसके उपवास से सिन्यस्थ के उपर दीपक की

देखने लगे । सावित्रो माँ-बाप को प्रणाम करके दासी के हाथ से पंसा लेकर पिता को इवा करने लगी । राजा उसे रोक कर बोले । "बेटी सावित्री, तुम श्राज दिन गर की मुखी हो, तुमको पंसा

ब्योति पड़ने से वह सायंकालिक कमल की माँति सुन्दर दिखाई देता या। राजा वात्सस्यभरी दृष्टि से सावित्री के ग्रॅंह की ओर भज़ना न द्वेगा। मुक्ते गरमी सालूम नहीं होती।" यह कह कर राजा ने बड़े प्यार से बेटी की अपने पास बिठा कर कहा— "उस दिन वा तुम मेरे और रानी के दीर्घजीवन के लिए ब्रव कर ही चुकी हो। आज फिर कैसा ब्रव किस अभिप्राय से कर रही हो ?"

सावित्री—''पिताजी! पुरोहित ने कहा है, आज कल्याय-पश्चमी है। आज उपवासपूर्वक देवीपूजा करने से प्रियजनों का किसी तरह का कोई अमङ्गल नहीं होता। इसलिए जिसमें हमारी प्रजा दुर्भिन्न स्प्रीर महाभारी आदि उपद्रवें से कष्ट न पावे सैंने स्प्राज उपवास किया है। कल अगदम्बा की पूजा करूँगी।''

राजा—"वेटो ! तुम्हारी सी कन्या पाकर हम अपने की धन्य भानते हैं। इस दोनों कोपुरुषों ने जी उतने दिन कठिन तपस्या की थी, वह सार्थक हुई। किन्तु तुम अभी वालिका हो, वरावर उपवास करके शरीर को इतना कष्ट मत दो। पहले अपने शरीर की रचा करके पीछे धर्माचरण करना उचित है।"

सावित्री—''उपनास से मुक्ते विशेष कष्ट नहीं होता। विना फुछ कष्ट सहे धर्म कैसे होगा ?"

रानी ने महाराज से कहा—''श्राज सावित्री महर्षि देवल से जपनिषद् (वेदान्त) पढ़ते समय एक कहानी सीख आई है। वह आपको और मुम्ने सुनाना चाहती है। आपकी आहा पावे तो कह सुनावे।"

राजा—''श्रच्छा तो, सावित्री ! कहो कौनसी कहानी सीख ग्राई हो ?" सावित्री—"वह कहानी मुफ्ते बहुत अच्छी लगी। महर्षि ने जिस तरह कही श्री, मैं वस तरह नहीं कह सक्टूँगी, तथापि जहाँ तक हो सक्तेगा, मैं कहने की चेटा कहूँगी। वह कथा इस प्रकार है—

"पूर्वकाल में देवता और दानवें। में घोर युद्ध हुआ था। कई वर्ष तक युद्ध जारी रहने के बाद देवताओं ने जयलाभ किया। श्रसुरगण हार कर भागे । देवनण युद्ध में विजयो होकर घड़े गर्वित हुए। उन्होंने समका, इम सर्वों ने ध्रपने वाहुवहा से श्रसुरों की जीता है, इसिक्कए युद्धविजय के सम्पूर्ण सुयश के मागी हमीं लोग हैं। इस तरह जब उन लोगों के मन में ग्रहङ्कार उत्पन्न हुआ, तब जन्हें एक दिन एक अपूर्व ज्योति देख पड़ी। उस ज्योति **को आ**गी सब प्रकाश फ़ीके पढ़ गये। यह देख कर वे लोग बढ़े अनस्भे में श्राये श्रीर सोचने जगे कि यह कैसी ज्योति है ? इस लोगों ने ऐसी दिव्य ज्याति आज तक कभी न देखी थी, इसकी जाँच करनी चाहिए। यह सोच कर उन्होंने प्रप्रिदेव की उस ज्योति के पास भेजा। प्रप्रिदेव की अपने पास धाते देख कर ज्योति ने प्राकाश-बायी के द्वारा उससे पूछा—"तुम कौन हो ?" अप्रि ने कहा— "मैं अग्नि हूँ।"

ज्योति—"तुम में क्या शक्ति है ?"

श्रिप्रि—''मैं चाहूँ तो चल भर में सारे ब्रह्माण्ड को जला कर भस्म कर हूँ ।"

ज्योति—"ग्रन्छा ! इस रुख को जलाग्रेग ।" यह कह कर एक तिनका उसके ग्रागे फेंक दिया । अग्निदेव बहुत चेटा करने पर भी उस तिनकों को न जला सके। श्राखिर वह लिजत होकर देवताओं के पास लीट श्राये।

तब देवताओं ने वायु को उसके पास भेजा। ज्योति ने फिर उससे पूछा तुस कौन हो १"

. . : बायु—''मैं पवन हूँ।''

ज्योति--''तुम में क्या शक्ति है ?"

वायु—''मैं चाहूँ तो चल भर में सारे विश्वनद्वाण्ड को खड़ा
 कर कहीं से कहीं ले जा सकता हूँ।"

क्योति--"श्रम्छा, इस तिनके को उढ़ाकर दूर ले जाग्री।"

वायु वहुत चेष्टा करने पर भी उस तिनके की ज़रा भी न हिला सके, दूर हटाने की कौन बात । पीछे लाजित होकर वे भी भ्रमनी जगह की लीट गये।

तव स्वयं इन्द्र उस ज्योति के पास गये। बुद्धिरूपियां भगवती के द्वारा उन्हें ज्ञात हुआ कि ब्रह्म ही वह ज्योति स्वरूप है। संसार में जो कुछ देख पड़ता है सब का मूल वही है। तब से देवताओं ने जाना कि उनकी निज की स्वतन्त्र शक्ति कुछ नहीं है। उसी मूलशक्ति से उन लोगों की शक्ति उरफ्त हुई है। यह जान कर उनका अभिमान चूर चूर हो गया।"

यह कह कर सावित्रों बोली—"कहिए, यह कहानी कैसी अच्छी है ?"

राजा—''बहुत खच्छी। तुम जे। इस करह जी लगा कर राज पढ़ रही हो, इससे मैं अल्लन्त प्रसन्न हूँ। तुन्हारे पुण्य से मेरे वंश का गैरव बढ़ेगा।" यह कह कर राजा ने रानी 20₹

की ग्रीर देखा। रानी ने उनका श्राशय समक्त कर दासियों को रल जाने का इशारा किया । वे वहाँ से धीरे धीरे हट गईं। तव राजा ने सावित्री से कहा—''वेटो, हम तुमसे कुछ कहना चाहते हैं। "

सावित्री-- "श्राज्ञा कीजिए, श्रापकी श्राज्ञा हम सवीं की शिरोधार्य है।" राजा—''बेटो ! तुम भव च्याहने योग्य हुईं, जिस उम्र में

क्षियाँ गृहस्थधर्म में प्रविष्ट होती हैं, वह उम्र अव तुम्हारी हो चुकी ।

ध्रव तुम किसी योग्य वर की पत्नी होकर गृहस्थवर्म का पालन करें।, यही हमारी इच्छा है । किन्तु वात यह है कि हमें तुम्हारे योग्य रुपयुक्त वर नहीं मिलता, इसलिए तुम ग्रापही कोई वर पसन्द करो । इस उसके साथ बढ़ी प्रसन्नता से तुम्हारा ब्याह कर देंगे । यही तुमसे कहना था।" सावित्री सुन कर चुप हो रही। राजा ने फिर उससे कहा-"इसमें संकोच करने की कोई वात नहीं। खयं पित वरण करने की रीति इमारे चत्रियसमाज में पूर्वकाल ही से प्रचलित है। यह कुछ नई रीति नहीं जिसके खिए इमें कोई हैंसेगा। इस तुमकी उसी पुरातन प्रथा के अनुसार चलने की कहते हैं। तुम अपने मन से देश

में किसी विपद की भ्राशङ्का ता नहीं है ?" राजा---"विपद को कोई आशङ्का नहीं। मेरा राज्य सुशा-

विदेश धूमो, शहर में, देहात में, या तपावन में जहाँ तुम्हारे मनातु-कूल वर मिले, भ्राकर इससे कहो, इस तुन्हें उसके हाथ सींप देंगे।" रानी--"महाराज ! सावित्री के इस प्रकार देश-देशान्तर घूमने सित है, इस कारण मेरे राज्य में शायद ही कोई उच्छुङ्खल और दुराचारी होगा। मैं प्रजाओं का पुत्रवत् पालन करता हूँ, इस-लिए कोई मेरी कन्या के साथ कहापि अनिष्ट व्यवहार नहीं कर सकता। मेरे पड़ोस के रहने वाले राजा महाराजा सभी मेरे मित्रवा-सूत्र में बँधे हैं। इसलिए सावित्री उनके प्रजा-गर्थों से सम्मानित होगी। सावित्री झकेली तो जायगी नहीं। उसके साथ उसकी हो सिख्यां उसकी दाली और मेरे बूढ़े मन्त्री सुप्रक्ष भी जायँगे।"

रानी—"तो कोई चिन्ता नहीं।" पीछे उन्होंने सावित्री की श्रोर देखकर कहा—"वेटी! रात श्रीक बीती, तुम त्रती होकर दिन भर की भुखी व्यासी हो। श्रव जाकर सो रहो।"

सावित्री माता-पिता की प्रशाम करके सोने चली गई।

विपाशा नदी के बांबे किनारे कोती तक वना जब्नुल है। उसके भीतर एक सुन्दर आश्रम है। किती समय विश्वध्यान ने उसी आश्रम में तपस्या करके सिद्धिलान किया था, तब से वह आश्रम तपस्वी ऋपियों का निवासखान हो गया। वह आश्रम इतना प्रसिद्ध हुआ कि वानप्रखाशमी व्यक्ति भी वहीं आकर आश्रय लेवे वे धीर मुनियों के साथ रहते थे। देश-देशान्वर से अनेक निवार्थी आकर विचा पढ़ते थे। इससे वह आश्रम सदा ही वेद-पाठ से प्रतिख्वनित होता रहता था। विद्यार्थी और ऋषिकुमारों में बड़ो प्रीति थी। वे सब एक साथ पढ़ते थे, एक साथ गुरु की गायें चरावे बे, एक साथ होना की लकड़ी, कुश और फूल लाते थे। किसी को बीमारी होनी थी तो सब उसकी, श्रय्या के पास कैंवकर उसकी सेना करते थे। गाँव के लोगों में लो

प्रेमसाव होना दुर्जम है वह ऋषिकुमारों को वरोवन में सहज ही प्राप्त था। वे एक दूसरे की सहायता करके कृतार्थ होते थे।

एक दिन किसी पर्व के कारण कितने ही ऋषिक्रमार स्नान करने के लिए विपाशा नदी के तीर श्राये। उनमें कोई कोई विपाशा के खच्छ जल में सान करने लगे, कोई शिलाखण्ड पर वैठे, कोई पीछे त्राते हुए सृग-शावकों के लिए कोमल घास लाने श्रीर कोई फूल तोड़ने लगे। दो ऋषिकुमार भीर साथियों से ऋछ दर एक ष्ट्रच के नीचे खंडे होकर परस्पर वातचीत कर रहे थे। दोनों का पहनावा स्रोदावा स्रीर वयस एक होने पर भी दोनों के स्नाकार में बड़ा ग्रन्तर था। एक देखने में साधारण ऋपिकुमार के सदृश था. किन्त दूसरे की देखने से वह ऋपिकुलोत्पन्न नईं। जान पढ़ता था। उसका सम्या शरीर, विशास वचःखल, कन्या स्रीर बाहु पुष्ट थे। उसके श्रद्ध प्रत्यङ्क से कमनीयता के साथ बिल्नप्रता प्रकट होती थी। दोनों गपशप कर रहे थे। ऐसे समय में एक सवार हाथ में छड़ी लिये वहाँ स्राया स्त्रीर उबस्वर से बोला—"ऋपिकुमारगण, मद्रदेश की राजकुमारी सावित्री देवी आज इस स्पोवन में आई ं है। स्राप होग उनका प्रशास स्वीकार करें. यही मैं स्राप होगें। से कहने श्राया हैं।"

यह सुनकर पूर्वोक्त दोनों ऋषिकुमारों में एक ने दूसरे से कहा—"मित्र सखवाल ! देखेा, भेरी वात सच हुई न ? हम सव ब्राह्मख हैं, हम सबों का भाग्य सदा समान रहेगा। एक सुट्टी चावल और कचे केले से ही हम लोगों को सांसारिक सब मनारथ पूर्ण करना होगा। किन्तु सुम चत्रिय हो, सुम्हारा भाग्य परि- वर्तनशील हैं। किसी युद्ध में पराजिव होने से, सम्भव हैं, ग्राज राजा से तम मिलक वन सकते हो श्रीर कब बद्ध में विजयी होते

888

राजा से दुस गिस्तुक वन सकते हो और कह शुद्ध में विवर्ध होने से एक वहे राज्य के प्रशिपति हो सकते हो। यह वो राजकुमारी प्राात वरोबन में प्राई है, कीन कह सकता है कि वह सर्ववर की सभा में दुसको एक्टर न करेगी १⁹ सरवान—"किव सरवान । वेकटा हैं. अस विवासक्त की

मावित्री ।

सभा में हुएको प्रसन्द न करेगी १⁷⁷
सत्तवान्—"गिव सत्तवान् | वेस्तवा हूँ, ब्लब विशासाम की
प्रानेश माहबीताम की इच्छा ही हुएहारी वक्तवी ही रही है। हुम कहा तो वह संबद कोशाली में कुचारे रिवा के पास सेत हूँ १⁷⁷
सत्तवन—"ठडरिए, वह बाद पीडी होगी। बामी आ पर

चली । इस क्षेत्र तो आई, तेल के घमाव से रूचकेशा, रख के प्रभाव से ब्ल्कलधारिको धीर अंतेण्यास से स्वित्रशरीरा त्येषक-

वासियों को ही जन्म से देखते जाते हैं। रावजुकारों कैसी होती है कभी न देखी, चली, एक बार देख हों। तुन्दारा दो राजजुल में जन्म है, कड़ो, क्या राजजुकारों के भी साचारव की की तरह दे! हाय कीर दो कांकें होती हैं।" धत्सार—"हां, निज! वैसे ही सब कुल होते हैं। प्रस्तु हम होगों की राजजुन्म के दर्शन से क्या सास होगा।"

खसवार—"दा, तमा । वस हा सम कुछ हात है। परन्तु इस होगों को राजकन्मा के रुगैन से बना लाभ होगा ।" देखी, दूर्वदेव वाले के उगर का गये। वस देशपटर ला समय हो गया। महर्षि यक्तविषट हानिय्य बांटने के लिए क्षय हम लोगों को स्वान करेंगे। इस समें के जाने में विलयन होने से ने दुर्ती होगों। वली, महम्बद हान करके प्राप्तक को लीट चलें।" टोमों नहाने के लिए नहीं की और क्षमकर हुए। इसी समय सामित्री भी परिचलों से चिर्प हुई वृत्तवी फिरती क्सी और स्म निकली। जङ्गल का रास्ता स्वभावतः टेढ़ा मेढ़ा होता है। दो ग्रेगर से हो सडकें श्राकर एक जगह मिल गई थाँ। सावित्रो श्रीर सत्यवान दोनों की मेट परस्पर ठीक वसी जगह आकर हुई। दोनों की चार आँखें बरावर हुईं। दोनों चित्रवत् खढे होकर एक दूसरे की निर्निमेप नेत्र से देखने लगे । दोनों के हृदय में एक श्रपूर्व भाव का उदय हुआ। दोनों एक दूसरे का रूप देखकर मोहित हुए। क्रुद्ध काल दोनों विस्मित हो रहे। इसके ग्रनन्तर जिस भाव का श्रनुभव उन दोनों के हृदय में कभी न तथा या क्रमश: उसी भाष का श्रममन उन्हें होने लगा । दोनों के शरीर कण्टकित हुए, सलाट पर पसीने की बूँ दें दिखाई देने लगाँ। पीछे संकोचवश दोनों उस स्थान की त्याग कर अपने अपने गन्तव्य पथ की श्रोर जाने की उद्यत हुए, पर किसी के पैर आगे को न उठे। दोनों अपने अपने मन का भाव छिपाने की चेष्टा करने लगे किन्तु कृतकार्य न हो सके। ऋषिक्रमार ने मित्र का भाव देखकर कहा-- "सित्र ! गुरुदेव के यहावशेष बाँटने का समय हो गया, आश्रम लीट चलने में विलम्ब क्यों कर रहे हो ?"

सावित्री की दासी भी सावित्री की ओर लक्त्य करके घोली--"राजकुमारी ! क्पोबन तो हम सब देख चुकीं, चलो, अब हम सब दूसरी ओर चलें ।"

दासी का आशय समभ कर सावित्री वोली—"वहुत दूर धूमने से मेरा शरीर थक गया है, चलो अब राजधानी लीट चलें।" दासी ने कहा—"अच्छा, यही सही।"

द्याज अश्वपति **धौर दिनों की ध्रपेचा पहले ही** ग्रन्त:पुर में

व्यापे हैं। ब्राज उनका ग्रुँह सुखा है, वारंबार तीज विश्वास से रहे हैं। मानो कोई कठिन सनस्वाप उनके इत्य को सन्तार कर रहा है। वे अपने सपत्वपृद्ध में पहुँच पर बैठे से, उनके ग्राने की सुबर पाकर राजी भी उनके पास आई। उन्होंने राजा की चिन्तित देसकर पूछा---

"महाराज! आज जापको ऐसा ब्वास्त श्रीर शिशिक क्यों देखती हूँ ! सावित्री अपने पसन्द का वर ठीक कर आई है! भापको अस आसन्दर्वक वसके व्याह तो सेवारी करनी चाहिए, जा एकान्त में कैठकर आंस् बहाना चाहिए! आपका ऐसा आव देखकर सेरा जो बहुद स्वाकुछ हो रहा है। कहिए क्या हुखा है।

प्रकार सरा का बहुव क्वाकुछ हा रहा है। काहए क्या हुआ है ११७ राजा---'क्या कहें १ इसने सावित्रों को खर्च पति हैं है जैसे का भार देकर भारी सूर्ववा का काम किया है अपने हाब से अपने पैर पर कुरहाड़ी सारी ११७

रानी---''क्वा हुट्या १ क्वा सावित्री किसी अयोग्य वर की पसन्द कर आहे है १७:

राजाः—''नहीं, सावित्री वैसी नासम्प्रम नहीं हैं। सावित्री से विश्व के माश्रम में जाकर किसे पति को योग्य चुना है, सन्त्री सुग्रं क्षसता पूरा परिचय खात्रे हैं। तुमने माल्वरेश के राजा भुगरतेन का नाम कमी सुना होगा। बुदाएं में करने धम्मा चौरर उनके पुत्र को मालक देखतर दुस्यनों ने करका राज्य दृद्ध किया। वे दस समय सी मीर वेटे की साथ जे विश्व के भाग्रम में रहते हैं। सावित्री ने निवीसित राजा खुमरतेन के पुत्र सस्यवान की प्रियाद से स्वीकार किया है।

रानी—"सरावान राज्यवन से रहित है, क्या इसीलिए श्राप इतना सेाच कर रहे हैं १%

राजा—''नहीं, इसके लिए मैं ज़रा भी सोच नहीं करता।
मैं अपने दु:ख का कारण दुमसे कहता हूँ, सुनी—अपज देविषे
नारद यहां आये थे, मैंने मन्त्रों के मुँह से सखनान और सावित्री
के परस्पर अनुराग की बात सुनकर उनसे सखनान के सस्यन्थ
मैं पूछा था।''

रानी--"देवर्षि ने क्या कहा ?"

राजा—''जन्होंने कहा, रूप, गुख और शीख में सखवान के समान संसार में कोई नहीं है। सखवान जितेन्द्रिय, जमाशीख, मुनिशृत्त खीर उदाराशय है। किन्तु ये सब गुख रहने ही से क्या होगा ? एक प्रवत्न दोप ने सखवान के सबी गुखें पर पानी र फेर विचा है।"

रानी---"कैसा दोप ?"

राजा—''सद्यवान अल्पायु है । देवर्षि ने कहा है, आज के वर्षनें दिन सद्यवान की मृत्यु होगी।''

सुनकर रानी चौंक वठीं, उनका सारा शरीर कांपने लूगा। वे कड़ी अधीरता से बोर्लो---'महाराज! अब इसका क्या उपाय है ?ग

राजा—"खपाय तो और कुछ नहीं सूमता। यदि सावित्रो दूसरा पति पसन्द करे सभी रखा है। नहीं तो हम होग सदा के हिए शोकससुद्र में निमन्न होंगे। तुम सावित्रों को यहाँ बुहाओ, हम तुम दोनों उसे समका कर देखें, शायद नह मान जाय।¹²

रानी---"मैं प्रभी उसे यहाँ बुखा मेज़वी हूँ, किन्तु सावित्री

में समाव को मैं भागी माँति जानती हूँ। उसका हदय एक श्रोर कमल सा कोमल है, दूसरी ओर कन्न से भी कठोर है। वह जिसे धर्मसङ्गच सममेगी, प्राष्ट्र जाते भी वह उसके निरुद्ध काम न करेगी। ईश्वर की की करना होगा वहीं होगा। ए

माता-पिता की जुलाइट से सावित्री तुरन्त वहाँ आहें, और वनको प्रधास करके मीटे कर में बोली—'कापने क्यों सुकी बुद्धाया है ? क्या धाक्षा होती है ?"

राजा—''हाँ, बेटी ! मैंने तुसकी बुखाया है, दुस मेरे पास प्राक्त वैठो,'' इस प्रकार उसे अवने पास विठा कर राजा ने स्नेह भरे त्वर में पूछा—"तुम कई दिन तक कितने ही सानी से घूम कर माई हो, कहो, तुन्हें मार्ग में कोई कप्ट ते। नहीं हुआ 💯

सामित्री—''नहीं पिवाजी! सुमें कुछ कष्ट न हुआ। वरिका इतने दिन मेरे बहे आतन्द में कटे। किवने ही सुन्दर देश, नदी, भीर पहाड़ आदि देखने में आसे । वह आपसे कहाँ तक कहूँ ? कहीं कमलबन से मुशोजित सरोजर थे, कहीं खेतीं में थान के हरे पेंड़ छहन्नहा रहे थे । कहीं भरतीं से जल गिरने का मधुर शब्द सुनाई देता था। कहीं पहाड़ के ऊँचे शिखर पर मेथे। की शोसा विसाई देती थी। देहात में ये सब दृश्य कहीं दिखाई नहीं हेते। देहाती में जहां देखिए वहीं सैखें कुचैले लोगों की भीड़माड़ और सबनों पर चूल ही जूह दिखाई देती है। मेरा जी चाइता था, अगर माँ और बाप मेरे साथ होते तो मैं वहाँ खौट कर न पाती।"

राता-'बेटी । तुम निर्वित्र लीट बाई, यह देख कर हम वहुत प्रसन हुए। अब दुमसे हो एक शावरथक वार्त कहनी हैं।

हुमने जिसे पीतेसाव से अङ्गीकार किया है, उसके सम्बन्ध में इसने सब बातें जानी हैं। हुस मेरे कौर अपनी मां के अनुरोध से बसे साग कर दूसरा पति खोजो।"

सावित्री पिता के कथन का जुळ उत्तर न देकर जुण हो रही। राजा में फिर उससे कहा—"वेटी ! इस क्यों तुमसे यह कहते हैं, इसका कारण सुने। आज देवीं नारह इमारे यहां आये थे। इमने सरावान के विषय में उनसे पूछा था। वे उसके मनेक गुणे का वर्षन करके अन्त में वोले—"ये सब गुण रहने ही से क्या

होगा ? सत्यवान श्रवान अव्याद है। आज के पूरे वरसवें दिन दसकी मृत्यु होगो !³ ऐसे श्रव्याद्य वर को आत्मसमर्थया करने से केवल कुन्हों को नहीं, कुन्हारे साथ इस खोगों को भी चिरकाल क्क शोकससुद में निवास होना एड़ेगा। श्रव श्री समय है। हुम दससे चिरत हो।³⁷ सावित्री के सिर से पैर क्क मानो विजाबी दीड़ गई। किन्द्र

एसके चेहरे पर कुछ विलच्चाता न देख पढ़ी ।

रानी वोडी—"धानिकी ! महाराज जी तुमसे कह रहे हैं,

मह धर्मीविरुद्ध कार्य नहीं हैं । कुमारी शतंवरा होती हैं । सैकड़ों

जगह दसके द्याह की बात होती हैं, परन्तु व्याह एक ही तर के
साथ होता हैं । सुमने सलवान को देख कर दन्हें अपने योग्य वर
निर्धारित मात्र किया हैं। पति रूप में वो उनको स्वीकृत किया ही

नहीं हैं । यदि करती तो सी सुम्हारा उन पर कोई अधिकार न

सा। कारण यह कि जितने हिन पिता कन्या का प्रदान न करे

नहीं। सरवार अस्पातु है, यह जान कर वच उसके साथ हुम्हारा ज्याह होना हम सवीं को पसन्द गहीं है व्या सरवारा को छोड़ कर किसी अन्य व्यक्ति को स्वेकार करने से हुप प्रपक्षित नहीं हो सकतों। सन्दानों के क्लिए माता-पिता का आखा पाहन ही परम धर्म है। इसे हुप कभी सब मुलो।?

सावित्री बैठी थी। बठ कर सही हुई। बसने हाथ बोड़ कर वह विनीत तर में माना पिना से कहा—"मैं कभी ध्यायकी आहा के बिठद कोई काम नहीं करवी। इस संसार में जाप हो मेरे पूक्य देवता हैं। देवाका की साँधि आपको आहा का पहल करना ही मैं अपना परत भर्में समस्त्री हैं। विक्तु इस समय लाग नो आहा करते हैं, उसके पाहन से खेलक में हो वहीं, आप होग भी पाप के मानी होंगो। बैनी आपको आहा के खतुसार ही पति का तिर्याचन किया। अपनी हफ्का से खुत सहार ही पति का तिर्याचन किया। अपनी हफ्का से खुत सहार होग दी कम पहले में हमान में मान ही अमान होता है। बच्चेंकि कमें पहले में ही होता है। विचींकि कमें पहले में ही होता होता है। विचींकि कमें पहले होता है। विचींकि कमें हाल कमें होता है। विचींकिक कमें होता होता है। विचींकिक कमें होता होता है। विचींकिक कमें होता है। विचींकिक होता है। विचींकिक होता है। विचींकिक होता है। विचींकिक होता है। विचीं

"यन्पनसा ध्यायति सद्वाचा वदति यद्वाचा वदति तत्वन्यसा ऋरोति"

इस दिए को बाव में अन में स्थिर कर जुन्ते हूँ, वह पत्त प्रकार से हो गई समस्मिए। कव वे कल्यायु हाँ वा दीनाँयु, वे मेरे पति हो जुन्ने। काना परिसाग करने से मैं कमर्यामारिनी हूँगी। साप कहते हैं, उनकी आयु एक वर्ष और है, क्स्सनें दिन उनकी जीवनसीता समाए हो जावगी, यह व होक्त यदि कनकी अयु एक पवित्रता ।

११८ मिं ही दिन में परी

ही दिन में पूरी हो जावी वेा भी उनका टाग गुभसी न हो सकता। बहुत क्या कहूँ, विवाह होने के पूर्व यदि में उनके श्रमङ्गल की बाव सुन पाऊँगी तो मैं श्रपने को......।"

सावित्री इससे अधिक और कुछ न वेख सकी। उसका कण्ठ रक गया। उसकी आंखों से आंसू वहने लगे। रानी वेटी की यह अवस्था देख कर स्थिर न रह सकीं। उनकी आंखों में भी आंसू भर आये। वे सावित्री को सींच कर छाती से लगा उसकी आंखें में शि इस हारों। पत्री और पुत्री की दशा देखकर राजा को आंखें भी डबड़वा आईं। रानी और राजा देनों सावित्री का स्थमाव जानते थे, इस लिए उन्होंने उससे और कुछ कहने की आवश्यकरा न सममी। राजा ने केवल उससे इतना ही कहा—''वेटी! जो तुम्हारी इच्छा होगी, वही होगा। इस हदय से आशीर्वाद देते हैं, यह हमने मन, वचन और कर्स से सावित्री देवी की आररस्था की होगी ते। तुम्हें प्रैषक्य का छेश न भोगना पढ़ेगा।'

सावित्री पिता से ब्राह्मा ले अपने महल को गई। राजा श्रश्व-पित ने तपीवन में द्युमत्वेन के पास दूत सेज कर सावित्री के ज्याह की आयोजना करने के लिए सन्त्रियों को आहा दी।

श्चम दिन शुभ घड़ी में बढ़ी धूम धाम से सत्यवान के साथ सावित्री का व्याह हो गया । राजा अश्वपित ने वन्धु-वान्धवों को साथ ले तपोवन में जाकर कन्यादान किया। कई दिनों तक तपो-वन आजन्योत्सव से भरा रहा । विद्यार्थी राजा के दिये हुए मॉिंत मॉिंत के मिष्टान्न-पान से, आअभवासी विविध प्रकार के खेल तमाग्ने देखने से और ऋषि-म्स्त्री और 'छण्किन्याये' बहुसून्य मूरब-सस्त से लाभ से एम हुई। भूक्ष-च्छ से व्यवहार के कारख आरी कीड़क हुआ। तमोवन की रहने वाली विषयों में पहले कभी वैसे झामूच्य न देखे थे। इसलिए किसी ने किहुब्बी की कण्ठ में और कण्ठ-मूच्य की बाँह में पहला। किसी में वेसर को कान में और सान के मूच्य की नाक में पहल लिखा। यह विभिन्न लीखा देख कर रानी से साय सी खियों ने बड़े कह से हेंसी रोकी। काई दिन व्योचन में रह कर रानी और राजा खीस् मरी खीखों से केटी और हामाद से निकट से विहा हो राजधानी की जैस्ट झाये।

सावित्री के पदार्पय के साथ ही शुमत्सेन के शाश्रम ने नई शोभा धारण की। कुटी के चारों ओर की बगह , खूब साफ सुबरा रहने सुगी। अंगन रेज़ रोज़ सीपा जाने सुगा। एक भी कंकड़ या कटि का पेड़ घर के पास न रहा। अपनम के बता कुच फल छूतों से प्रधिक सुरोधित हुए । होस की गाय प्रधिक दूध देने लगी। द्मतिशिगण पूर्व की अपेचा थे।जन सत्कारावि से व्यक्तिक एम होने हुने । शाजा धुमत्सेन श्रीर उनकी पत्नी को नववषू की सेनाभक्ति से शरीर में नये का और हवय में नवीन स्कृति का अनुसब होने स्रया । सानित्री की पाकर सत्यवानः की कितना हर्ष पुत्रा, इसका वर्णन नहीं हो सकता । दरिद्र अञ्चल धन पाकर, रोगी पूर्व रूप से आरोग्य लाम करके, निवार्थी निवा प्राप्त करके श्रीर साधक जन सिद्धि पाकर जो सुख पाते हैं, सत्यवान ने सवी सावित्री को पाकर वही सुख पावा । वे सब ही सन सोच 薪 पुलकित होते थे कि मैंने पूर्व जन्म में कीन ऐसा पुण्य किया जिसके फल से

वर्ष से उनके खामाविक सभी गुण और मी सजीव हो उठे। शाख-पठन में चनकी निष्ठा श्रीर भी बढ़ गई । जीवों पर दया श्रीर तप-श्चर्या में ऐकान्तिक प्रीति विशेष रूप से स्टपन हुई । वे सोचते थे, सावित्रों के पति होने के कारब अब मुक्ते गुख, झान धीर धर्म की विशोप योग्यता प्राप्त करनी चाहिए । मुक्ते ग्रपने की अधिक श्रेष्ठ

धताना उचित है।"

जो भ्रपने गुग्र से भाश्रम के पालित हिरन से लेकर स्वामी पर्यन्स सबको प्रसम् किये रहती थी, चसको सन की धनस्था भी एक बार देखनी चाहिए। सावित्री भी बोग्य पति पासर बहुत प्रसन्न

पुर्दः प्रसन्न ही नहीं, वह अपने की परम कुतार्थ सानती थी। वह राजकन्या थी। घर का काम करने का उसे सम्यास न या। किन्तु धाश्रम में धाते ही वह इस धानन्द और उत्साह के साथ काम

करने लगी जो गृहस्य की खियों से भी होना कठिन था। जे काम गृहस्य की खियाँ सहसा नहीं कर सकती वीं वह सावित्री सहज ही कर होती थी । जाड़े के दिनी में वह ख़ुब सबेरे विपाशा से पानी हो भ्राती थी, प्रचण्ड मीच्य काह में वह झाग के नज़दीक बैठ कर

रसेाई बनाती थी। उसे काम करने में हुंचा होता है, इस आराष्ट्रा से कहीं उसकी यूढ़ी सास स्वयं कोई काम न करें यह सोच कर वह घर के सब काम पहले ही कर लेवी थी । वह सास की कोई काम करने का अवसर न देवी थी। चसकी सीठी वातों से उसके बूढ़े सास-समुर के हृदय प्राव शीतन होते हे। उसका प्रसन्न मुखमण्डल उसके पति के शयनागार को प्रकाशमान कर देता था।

सावित्री का पवित्र धाचरण देख कर यही जान पढ़ता था तैसे , उसका तपावन के निवास में जन्म ही का अभ्यास हो। किन्तु देग्पहर दिन की वजली पुप में भी जैसे भेप की छाया

कभी करी धरती को सलिन कर खलती है वैसे ही उस धानन्द से

सरे हुए प्राप्तम में भी दारूप विचाद वीच वीच में सावित्री से हद-याकारा की अन्यकार से भर देता वा । वर का काम करते करते सावित्री कभी कभी वीत्र साँस होने सगदी थी, खामी के साब प्रेमालाप करते समय कमी कभी उसकी ग्रांक्षों में ग्रांस भर ग्रांते थे। स्वामी के निदित्त होने पर वह उनके पास बैठ कर धानिसेव दृष्टि से उतका मुँह निहारा करती श्री । बीच बीच में वह उनकी माक को पास हाज रख कर इस बात की परीका करती बी कि उनकी साँस चुलती है वा नहीं । कभी सावित्री का वर्स प्रांस छाती पर गिरने से गाह निहा में सोये हुए सरावान चौंक चठते थे । सावित्री का शरीर दिन दिन दुवछा और मुख की कान्ति संसित होती जाती थी । वह दिन दिन क्यों ऐसी चीवा होती जाती है इसका कारण कोई न जानता था। ऋषि की पहिलाँ सोचती थीं, सावित्री राजकुमारी है, जन्म से राजसुख भीगवी आई है, वपावन के क्षेत्र से उसकी ऐसी दशा है। वे सब दया से द्रवित होकर जब वर के काम में सावित्री की सहायता करने श्राती थीं का सावित्रो हाथ बोह कर वहें नितय भाव से उन्हें रोकती थी ! सावित्री की सास यह देख कर कि बेटे पतोह में बानुराग पूरा है तो मी बहु सोच से दिन दिन दुवली होती जाती है, विस्मित होती थी । इसका कारब उसकी समभ में न धाता था । ऋषिपत्रियों की साँवि वह सी यही समस्तरी थी कि

त्योवन के कप्ट से ही वहू इस तरह सूखी जा रही है। सावित्री आश्रमस्थित एक साखू के पेढ़ में दूसरे की आंख बचा कर प्रति दिन् सिन्दूर की लक्कीर खींचवी थी। चसकी बूढ़ी सास देखती थी, वहू बीच बीच में सहसा घर का काम छोड़ कर लक्कीर गिनने जाती है कीर वहाँ से आंसू बहाती हुई लीट कर फिर अपना काम करती है। वह इसका मस्त्रल नहीं समक्षती थी। वह यही सीच कर चुप हो रहती थी कि सावित्रों ने पिता के घर में कोई ब्रव ठाना होगा, वही

साख् को पेड़ में सिन्दूर की सकीर स्वींच कर गिता करती है। वह प्रति दिन इष्टदेव से प्रार्थना करके कहवी थी, ''शगवन् ! मैं अपने

लिप कोई सुस था कोई मोग नहीं चाहती हैं। धगर आपकी छुपा
सुफ पर हो तो मैं यही चाहती हैं कि मेरी सुशीला वधू सावित्री शास्त्र
देश के सिंहासन पर कैठे। मैं पहले यह अपनी आंखों देश हूँ तब
मरूँ । इस प्रकार सास-ससुर की सेवा में रहकर सावित्री का
दिन सुख दु:ख से बीवने लगा।
सेंही दिन पर दिन बीतते बीतते वर्ष पूरा हो चला। नारद ने
जिस भयक्कर रात में सत्यवान की जीवनलीला समाप्त होने की बात
कही थी, वह समय समीप आ पहुँचा। सावित्री ने ध्रपते पति की

सुखु द्वाने के तीन दिन पूर्व ही से त्रिरात्रोपनाथ व्रत ध्रारम्भ कर दिया। राजा धुमत्सेन ने सावित्री के इस कठोर व्रत ठानने की बात सुनकर उससे कहा—''बहुजी! तुसने बढ़ा ही कठिन व्रत ठाना है, तीन दिन बिना अन्न जल के रहना बहुत कठिन हैं। तुम्हारा सुकु-मार शरीर क्या ऐसा कठोर कह सहने चोम्य हैं ?'' सावित्री ने

जहा---"ग्राप चिन्ता न करें, ग्राप के ग्राशीर्वाद से कठिन होने

पर भी में इस ज़त को बड़ी श्रासानी से पूरा कर हाँगी।" क्रमशः नारद का बताया हुआ वह दिन आया। सावित्री ने ख़्व तड़के उठ कर प्रातःकृत्य से निश्चिन्त हो धधकती हुई आग में यथा-विहित हवन किया। आश्रम के निवासी तमस्वीगण और उसके सास ससुर ने "सीमाग्यवती भव" कह कर आशीर्वाद दिया। सावित्री ने "तथास्तु" कह कर मन गुरुजनों के उस आशीर्वाद को महण किया।"

इसी समय स्त्यवार स्त्वी तकड़ी जाने के लिए कन्धे पर कुछ्हाड़ी रख जड़क को रवाना हुआ। सावित्री उसके साथ जाने के हेंद्र उचत हुई। यह देख कर उसके सास-ससुर ने स्तेह भरे स्वर में कहा—"तीन रात के उपवास से तुम स्क कर काँटा हो गई हो, जड़क का राखा बड़ा ही वीहड़ है। कहीं केँची नीची ज़मीन है, कहीं काँटे ही काँटे हैं। सत्यवान धभी तीट आवेगा। तुम आज उसके साथ वन जाने का विचार न करे।।"

सावित्री ने बड़े विनीत भाव से सास भी कहा—''मां, मैंने जो त्रत किया है, उसमें स्वामी के साथ सदा रहने का नियम है। वन जाने में मुफ्ते कुछ क्षेत्र न होगा। त्राप अनुभह करके मुफ्ते स्वामी के साथ वन जाने की आजा दीजिए।''

सावित्री की विनयवाणी सुन कर सास-ससुर ने उसे वन जाने की आज्ञा दे दीं। सावित्री प्रसन्न मन से सत्यवान के साथ वन गई । वन की शोसा देख कर होनों के हृदय आनन्द से उसग उठे। कहीं साँवि आंवि के जङ्गली फूल खिले 'हुए हैं, जिनके सुगन्य से चारों और आसोदिव हो रही है, कहीं पूँछ पसार कर मयूर-गया नाच रहे हैं, कहीं फुँड के फुँड हिस्त स्वच्छान्द होकर धूम रहे हैं। ये सब दृश्य देखते हुए दोनों आगे बढ़े। कीन जाने, कव क्या होगा, इस सब से सावित्री के प्राया चया चया में उड़ रहे थे। किन्तु सरवान यह नहीं जानते थे। वे कमी सावित्री को जङ्गल की ग्रोमा दिसलाकर कमी जङ्गली-पशुमों की छोते वर्धन करके थीर कभी उसके साथ प्रीतिपूर्णक रहस्य संमापण कर उसके ' सन को बहला रहे थे। एक बार उन्होंने कहा—

"प्रिये ! मैं बारबार सोच कर भी इसका निश्चय नहीं कर सकता कि तुमने क्या देख कर भेरे सहश तुच्छ व्यक्ति की पवि बनाया !"

साविजी---''प्राक्षनाथ ! यदि आप की होते ते। आप इस बात को सत्मक सकते । पुरुष होकर रमखी के मन का भाव आप

कैसे जानेंगे ?"

सखवाय- "मुक्किसे ज्याह न करके यदि तुम दूसरे राजञ्जमार के साथ ज्याह करती तो तुम्हें गांध इतना क्षेत्र नहीं होता। मेरे दुर्माग्यरोग से तुम एक दिन भी सुखपूर्वक न रह सकीं। मैं तुमको कोई सुख न दे सका। "

सावित्री—''नाथ ! क्या रोज़ रोज़ यहाँ एक वात कहिएगा ! मैंने कई बार आपसे विनती की है कि ग्रुक से यह वात न कहिए । ऐसा ग्राप क्यों कहते हैं ? ग्रुको किस वात का दुःख है ? धन-रत्न का ? व्यापको प्रेम-सम्पत्ति पाकर में ग्रपने को इन्द्राबी से भी वढ़ कर भाग्यवती समकती हूँ । जियाँ मुख्या क्यों पहनना चाहती हैं ? सामां के मन की रिफाते के लिए । जब विना गहने के ही में आपके मन को हुआने राहती हैं वन बंदि सारे संसार के राजाओं की सम्पत्ति इकट्टों की जान तो करने में आपके करका की पहल की एक कहा के बरावर मी न समस्हें मी।"

सारवाग ने कहे च्यार से पत्नी की ख़ावी से लगाया और कहा—"व्यारी । में बचाये में बड़ा साम्यवान हैं, नहीं तो हुन्हारी सी की-एम हुम्में कहां मिलवी ।"

सामने एक सुला फेड़ देख कर सरवान की काटने की कार कुछा। में एक सार कुछा। के कि सार करका जी क्रमने

सामा और सामा इसीर कांपने समा। अनसमान दाहस निरापीड़ा ने उन्हें अपेतन कर दिया। उनकी बांधों के सामने पारी ओर प्रम्थकार छा गया। वे सब्हे न रह सकी, पत्नी से कहा कि ''सुसी

सावित्री ।

१२५

तरह निश्चेष्ट पहा है, नाक के पास हाव रख कर देखा, साँस

नहीं, हृदय निस्पन्द श्रीर श्रांसें पलक-रहित हो गईं। सावित्री समभ्र गई, नारद का बाक्य सत्य हुआ।

संसार में ऐसा कौन कवि, या चित्रकार है जो सावित्री की उस समय की अवस्था का वर्शन कर सके या चित्र सींच कर उसकी ग्रसली दशा दरसा सक्ते । वनमृत्ति खमावतः भयानक होती है। संध्या का समागम होते ही उसने ग्रींर्र भी मयानक रूप धारण किया। थेंाड़ी ही देर में चारों स्रोर गाढ़ स्रन्यकार छा गया। मानी सारा जङ्गुल प्रन्यकार के समुद्र में हूव' गया । वातचीत करते करते वे दोनों ऋाश्रम से बहुत दूर निकल द्याये थें। वह स्थान ऐसा निर्जन था कि कहीं मनुष्य की बोली तक सुनाई न देती थी। कंभी कभी दूर से बन्य पशुत्रों का भीषण चीत्कार सुन पड़ता या और हवा की भोंक से पेड़ों के परसर संघर्पण होने के कारण एक विचित्र ही विकट शब्द उत्पन्न होता था। किन्तु सावित्री स्राज निर्मय हैं। उसके सभी मनोरय श्रीर सुख की कामनायें भङ्ग हो गई हैं। इसलिए अब उसे भय किस वात का हो ? उसके नेत्र में आंसू नहीं है. माने। वह हृदय के ताप से बीच ही में सूख जाने के कारण थांखो तक ग्राने नहीं पाता। उसकी सांस भी तक तक कर चलती हैं। हा! जिस राजकुमारी ने कमी दुःस्व का मुँहतक न देखा था. वह आज एक निर्जन वन में रात को श्रकेतो अपने सृत पति के मस्तक की गोद में लिये वैठी है। इससे बढ़ कर शोक का ग्रव-सर और क्या द्वीगा ? इसी अवस्था में उसने पास ही एक पेड़ के नीचे एक अपूर्व मूर्चि देखी। घोर अन्धकार में भी वह उसे स्पष्ट देख पड़ी। वैसी श्रद्भुत मूर्ति श्राज तक उसने कभी न देखी थी।

प्रिथिक ध्यान देकर देखने से जान पड़ा कि वह मूर्त्ति केवल एक छाया मात्र है। अङ्ग-प्रसङ्घ रहने पर भी उसके धौर मनुष्य के त्राकार में वहत भेद हैं। सावित्री ने सोचा, क्या मैं यह स्वप्न देख रही हैं, परन्त कुछ ही देर में उसने देखा, यह मर्त्ति सत्यवान के निश्चेष्ट शरीर के समीप खढ़ी है। खप्न का सन्देह जाता रहा। उसने वेदान्त पहते समयः नाचिकतेषाख्यान में जो मृत्य देवता की कया पढ़ी थी. क्या यह नहीं कालपुरुष तो नहीं हैं ? सावित्री ने मन में सोचा, यदि वे हों तो अच्छा ही है। इधर वह छाया-मयी मृत्ति इस तीव दृष्टि से सावित्री की ब्रोर देख रही थी कि वह स्थिर न रह सकी। वह धीरे बीरे खामी के मसाक को गोद से नीचे उतार कर उठ खड़ी हुई और हाथ जेव्ह कर बड़े विनीत भाव से उस मूर्ति से पूछा—''धाप कीन हैं ? आपकी अमानुषी मूर्त्ति देखने से जान पडता है जैसे आप देवता हों, आप मेरा प्रशास प्रहर्य कीजिए और अपना परिचय दीजिए कि आप कैंान हैं, किस लिए यहाँ स्राये हैं ?"

छायामयी मूर्त्ति ने कहा—''मैं यम हूँ, तुर्न्हारे खामी सल-वान की श्रायु पूरी हो गई। इसी से मैं उसे लेने श्राया हूँ।"

यह कह कर यम धारे घीरे सखवान के निश्चेष्ट शरीर की खोर अप्रसर हुआ। सानिजी ने देखा, यम का स्पर्श होते ही सख-नान की देह से एक अपूर्व पुरुष के आकार का वेज निकला श्रीर साथ ही उसके सखवान का शरीर निवर्ष श्रीर डरावना सा हो। गया। यम उस अङ्गुष्ठपरिमाण वेजायय पुरुष की पकड़ कर हिच्छा दिशा की श्रीर ले चला। सानिजी भी उसके पीछे पीछे. चलो । कुछ दूर भ्रागे जाकर यम ने देखा, सावित्री उसके पीछे भ्रा रही है। तब उसने कहा—''सावित्रो तुस लैट जाओ, भ्रपने सामी का दाह कमें भ्रादि करे। ¹⁹

यस—"सुशोलें ! मैं तुन्दारी शुक्तियुक्त धर्म्मसङ्गत बात से बहुत प्रसन्न हुमा । सरावान् के जीवन से मिन्न तुम जो वर माँगोगी वह मैं तमको हूँगा।"

सावित्री ने ससुर का अन्धापन दूर होने की प्रार्थना की। यम "तथासु" कह कर आगे वढ़ा और सावित्री से कहा कि तुम-मार्ग चलते चलते थक गई, अब लीट जाओ।"

सावित्री बोली—"जब मैं अपने खामी के पास हूँ तथ मार्ग चलने का छुछ छेश मुक्ते नहीं है। स्वामी ही मेरे एक मात्र गति हैं। श्राप जहाँ इनको लिये जा रहे हैं वहां मुक्ते भी जाने की ब्याहा कीजिए।" साधुलनों की संगति कभी ज्यर्थ नहीं होती, इसलिए जब भाग्य से धापके दर्शन हुए, तब ब्यापका साथ छोड़ना उचित नहीं, आपकी छुपा से मुक्ते पति की सेवा करने का भी ध्रवसर मिलेगा।"

.यस—''हितंसनोहारि च हुत्तंसं वचः" तुम्हारी ममुर तथा हित की बात सुन कर सुमें बड़ी होते हुई। तुम सत्सवान की जीवन से भिन्न जी वर चाहे।, मांगी P

सावित्री ने ससुर की फिर से राज्य प्रश्न होने की प्रार्थना की । यस ने नहा-"ऐसा ही होगा।"

इसके चनन्तर साविश्रों ने किर प्रिय क्चन से यम की प्रसन्न करके उसीसे ''फ्लि बहुपुत्रवान हों'' यह दीसरा वर माँगा (

यम ने यह बरहान भी दिया। तेा भी सानित्री नहीं छीटी देखं कर उसने उससे बहा-- 'शाजकुमारी ! हुन्हारी सब कामनावे' पूर्व हुईं, बन तुस वर जीट जाको । नाती में नतमा कर तुम बहुत ब्र का गई' ।"

सावित्री—''जव मेरी धाँखीं के सामने जेरे खानी विराजमान हैं त्वय में बहुत बूर कैसे आई। यह दूर कैसे हुआ। मैं इनके साथ दूरातिहूर जाने की तैयार हूँ। आप निव्यक्तपात होकर वर्मपूर्वक प्राखी मात्र का शासन करते हैं इसीसे आपका नाम धर्म्मराज प्रसिद्ध है। आप साधु हैं, साबू के ऊपर विश्वास करने से कभी घोखा खाना नहीं पड़ता। इसी जिए में भाषके कपर विश्वास करके भाषके साथ चली हूँ ।

यम—''प्रियवादिनी ! मैं सुन्हारे सुँ ह से जैसी मोठी बात सुन एहा हूँ, कमी किसी के मुँह से न सुनी । सलकार के जीवन के प्रतिरिक्त तुम के। वर मोगना चाहे। माँगजो ।"

सावित्री बोली-"वदि आप प्रसन्न हैं तो मुन्ते यह वर दीजिए, जिसमें मेरे गर्भ से मेरे पति सलवान के एक सी बलिष्ठ पुत्र उत्पन्न हों।"

यस—''भ्रच्छा, वही होगा। अब तुस खीट जाओ, युषा परिश्रम उठाने की आवश्यकता नहीं।''

सावित्री— "धर्मराज ! में अब कुर्बार्ष हुई, मेरा मनेारथ सफल हुआ। किन्तु विना पित के में किसी सुख सम्पति, यहां तक कि स्वर्गलोक की भी अभिलापिकी नहीं हूँ। आपने मेरे सौ पुत्र उदरक्ष होने का वर दिया है, इवर मेरे पित को आप लिये जा रहे हैं, जिसमें आपका वाक्य सत्य हो सो कीजिए। सत्यवान को न जिलाने से आपका वरदान कैसे फालित होगा ?"

यम—"सर्वाशिरोमिश ! मैं अब समक्ष गया । सर्वी के ससीप पृत्यु को भी हार माननी पड़वी है। यह ली, अपने स्वामी को ले जाओ । मैं तुम्हें आशीर्वोद देता हूँ, तुम पित के सुख से सुखी होकर पुत्र-पात्रादि के साथ सुखपूर्वक जीवन व्यतीत कर अन्त में पित्रता का लेक प्राप्त करे। 175

यह कह कर यमराज सखनान के शरीर से निकाले हुए वस तेजोमय पुरुष की सानित्री के हाथ में सौंप कर फ़न्ताहित हुए। सानित्री भी उन्हें प्रखास करके जहां सखनान का शव था, आई। उस तेजीमय सूर्षि का स्पर्श होते ही सत्यवान के शरीर में पुन-जीवन का सच्चार हुआ। उन्होंने आँख खोल कर सानित्री से कहा—"प्यारी! देखें।, मैं शिरापीड़ा से ज्याकुल हो गाढ़ निद्रा में सो गया था। इतनी रात हो गई, तुमने सुक्षको जगा क्यों नहीं दिया ?"

सावित्री—"ब्राएको ब्रस्तस्य देख कर मुभ्ने ब्राएको जगाने का

साहस नहीं हुआ। अभी चारों श्रीर हंस अन्यकार में जड़की हिंस जन्तु युस रहें हैं, इनके बीच से हैक्सर जाना टीक नहीं। श्रात हुम श्रीर आप किसी संस्ट वहीं रात निवानेंगे। कह सपेरे ही आश्रम की लायेंगे।

इथर धर्मराज के वर से राजा शुमत्सेन की वासिं मिछ गईं। इस बाकिस्मक सौयान्य से उनके बौर रानी के धानन्द सबा बाअर्थ की सीमा न रहीं। किन्सु बेटे बीर पतेरह के जड़्तर से भाने में विसम्ब देख वे दोनों बढ़ न्याकुल हुए। सपीवन के सीग उन्हें अनेक प्रकार से साल्यना देने लगे। उस देखों ने जग कर रात विवाई । सेार होते ही सारिकी और सत्यवाद आश्रम में बा पहुँचे । सीयं हुए रह को पाकर जैसे रंक आसन्दिर होता है, वैसे ही रानी भीर राजा, वेटे-गताह की वेसकार बातन्तित हुए। बातम निवासी ऋषिमुनिगम धुमत्सेन की श्रकस्थात् आस्त होते देख माञ्चर्यान्वत हुए थे । इस समय सावित्रों ने मुँह से सब दुत्तान्त सुन कर वे लोग उस पतिज्ञता की बार बार धन्यवाद हेने लगे। यमराज ने कहा था कि शुमल्सेन फिर प्रथमा क्लेवा हुआ राज्य पानेगा। उसको बात शीध ही सफल हुई। धुमत्सेन के एक विश्वासी सन्त्री ने युद्ध में शत्रु की पराजित कर विजय प्राप्त किया। जनको राजधानी में हो जाने के हिए पुरवासियों के साथ वरोक्न में वर्धाखत हुआ । राजा व्युमत्खेन और उनकी रानी ने ऋषि और अविभिन्नियों से आसीस हैं कें तथा प्रतिह के साथ राजधानी की प्रयाण किया । साता-पिता की इपनुस्ति से सत्यवान् .सिंहासन पर धारुद्ध हो सावित्रों के साथ वह धारुष्य से शब्य का सुस सेगने

पतिद्यता ।

लुगे। यमराज के वरदान से सावित्री के पिता ध्रश्रपति ने भी वह-पुत्रलाभ से अपने जन्म को सार्थक समभा। सावित्रों के पातित्रत धर्म से सभी के मनारम सफल हुए। जो लोग धर्म की रहा करते हैं, उनको विपत्काल में धर्म हो सहायवा करता है।

पाँचवाँ ग्रास्ट्यान

स्मा से ज्यार के नाम के अधिक्र है, यह पूर्वकाल में विदर्भ स्मार से पुकार नाम का मिन्सी समय कर किर्मी देश में भीमचेन नाम का एक प्रजादिवेशी राजा राज्य करते थे। शिक्तपुर कमकी राज्याची थी। विदर्भ देश किन-सम्माचि में भारतार्थ के सब देशों में बड़ा चढ़ा या। येसी कोई फराज नहीं तो विदर्भ में करान न हो। वर्ष के मीनर जामी सोनी की ओर रहिट दीजिए कभी पान के पेड़ से सेन हरे भरे नज़र आजें। विशोध कर शरह खड़ु में वहाँ के सेनी की गीना का वर्षीन नहीं हो सकता। स्थासकाक्षी प्रकृति प्रमन्

नपुर द्वार्क्स से एक खब्बु में मानो वसी विशवकों के विकासित किये. रहती थी। तामी, जदा श्रीर पूर्वी आदि तदियों ने अनेक मार्ग से अवाहित होक्तर विदर्भ भूभि को सुजबा श्रीर सुपक्का बना रक्का आ। विदर्भस्था के निवासीगाव वसे परियमी श्रीर साइसी होते थे, इस कारव वहाँ पर घर में लक्ष्मी विराजनाम थी।

राजा भीम के ऐयर्च की सीमा न थी। किन्तु भतुस्र ऐयर्च रहने ही से क्या ? बाद क्सका भीएने वाला कोई उत्तराविकारी सपुत्र न रहा। हैर के हेर स्थिकोरियों से करका घर कामगाता या, किन्तु बालक-वालिकाओं की यीठी योठी युसकुराहट से वह कभी सुरोभित न होता था। गायक-गायिकागय वहाँ नित्य गान
करते थे किन्तु वधों की तोतली बोली से वह स्थान कभी सुपासिश्चित नहीं होता था। उनके समागृह में नर्तक नर्तकीगया नाच
करके लेगों का मनेतरकान करते थे; किन्तु वालक वालिकाओं के
सेल-कूद से वह कभी विनोदसय नहीं होता था। वहुन परिजनों
के वीच में रह कर भी रानी और राजा अपने की वन्यु-धान्धकविद्यांन समभन्ते थे और कभी कभी उनके जी में होता था कि इस
गृह्य राजमवन के निवास से वन में जाकर रहना अच्छा है।

यों ही बहुत दिन वीतने पर इसन नाम के एक छुनि राजा भीम के यहाँ झाये। राजा और रानी ने पूर्ण रूप से उनका झातिच्य सत्कार किया। उन दोनों दस्पती की भक्ति और सेवा से प्रसन्न होकंत विदा होने के समय मुनि ने राजा से कहा—"महा-राज! मैं झापकी और आपकी रानी की भक्ति से वहुत सन्दुष्ट होकर झाशीबाँद करता हूँ। आपके तीन पुत्र और एक कन्या-रह्म उत्पन्न होंगे।"

मुनि के बरदान से रानी ने क्रमशः तीन पुत्र धीर एक कन्या प्रसव की । दमन मुनि के अनुप्रह से ये सन्तानें उत्पन्न हुई थीं इसिलए राजा ने पुत्रों के नाम दम, दान्त ग्रीर दसन रक्खे। कन्या का नाम दमयन्ती रक्खा। सुन्दर कुमारों ग्रीर राजकुमारी की देख कर राजा ग्रीर रानी ने श्रमने की फुक्कून्य माना।

विदर्भ की राजकुमारी रूप गुण के लिए सदा से प्रसिद्ध थी। अगस्य सुनि की पत्नी लोपासुद्रा इसी विदर्मराजकुल में उत्पन्न हुई

दमयन्ती । १३५ थी । महाराज रम्नु की पुत्रवम् अन की वर्मपत्नी कमलकोमलाङ्गिनी इन्द्रमती चार लच्मीसक्ता क्विसकी देवी ने भी इसी विदर्भराज के दंश में जन्म लिया था। इसलिए दमवन्ती जो रूप गुरू में श्रीर राजकुमारियों से वह जायगी यह कुछ श्रसम्भव न था। फिन्तु इमयन्त्री को देख कर निदर्भ देश के बड़े बड़े बढ़े लोग भी कहते थे कि "ऐसी सुन्दरी लडकी इस वंश में कमी उत्पन्न नहीं हुई थी।" दमचन्तों ने जब कमशः वैक्त की सीमा में पैर रक्का तब राजा ने उसके रहने के खिए महल के भीवर एक ख़वन्त्र घर दे दिया। दमयन्त्री वहाँ सस्त्री सहेक्षियों के साथ सुलपूर्वक रहने सुनी। वह कभी सब्सियों के साथ महता के मीवर के पेखर में जलकीड़ा करती, कभी फुलवाड़ी में घूसने आदी और कभी हरि-मन्दिर में बैठ कर शाख-पुराख सुनती थी। वसवन्ती की सरिवर्या **उस पर बढ़ी** प्रीवि रख्ती थीं । वे गानवाच थ्रीर मीठी वाते! से सदा उसका जी बहुळाती वीं । राजधानी में धनवान क्लबान धीर धर्मात्मा चादि प्रसिद्ध व्यक्तियों की वाते['] चलती ही रहती हैं । करों किस बनाट्य ने एक अनुपम बाग् स्नगाक्षा है। फिसने कीन व्युपूरव पेादा या द्वायी मील शिवा है, किस राज्कुमार ने सम्रापरीचा में सबकी परास्त किया है और कहां किस राजा ने यह करके अपना सर्वस्व शहायों को दे दिया है। राजा के अन्त:फुर में रहने वाली खियाँ इन्हों सब वातों को लेकर ग्रापस में बातें किया करती थीं। इन प्रानेक प्रसिद्ध लोगों के वीच एक व्यक्ति का साम दमयन्त्री की वरावर सन् पडता था । असावार्क काम से हेकर साधारयं काम तक

श्रनेक विपयों में लोग उनका नाम लेते थे। यदि किसी ब्रह्मज्ञानी या वेदवेदान्त के जानने वाले न्यक्ति की वात छिड़ती थी तो राज-प्रराहित फट बोल उठते थे, "इस विषय में निपधदेश के राजा नल की बराबरी करने वाला कोई नहीं है।" यदि किसी राजा की सत्यनिष्ठा की बात चलती थी तो राजसभा के सदस्य कहते थे--''राज्यशासन के लिए कीन ऐसा राजा होगा जो दे। एक भूठी बात न बोलता होगा, परन्तु, राजा नल ही एक मात्र ऐसे राजा हैं जो कभी किसी के साथ भूँठ नहीं वोलते।" यदि किसी सार्याय की रख चलाने में श्रुटि होने के कारण उसे फटकार बताई जाती थी तो वह यही कहता था-"मैंने महाराज नज के यहाँ सारिय का काम किया है। महाराज ने खर्य मुक्तको घोड़ा र्हांकने की शिचा दी है। सारंध्यकार्य में उनकी समता करने वाला कोई नहीं है।" यदि रानी किसी रसोइये से अधिक वेतन माँगने का कारण पूछती थी ते। वह कहता था, मैं तीन वर्पसे प्रधिक समय तक महाराज नल के यहाँ प्रधान रसीह्या था। महाराज ने खर्य मुमनो रसोई बनाना सिखहाया है। अगर में आपको और महाराज को रसोई जिमा कर दात न कर सक्टें ते। आप एक पैसा भी मुक्ते वेतन न दें ।"

छम्न बढ़ने के साथ दमयन्त्री मन ही मन सोचती थी, जिस माननीय महापुरुप की प्रशंसा में इतने दिन से सुनती हूँ, वे कैम हैं ? ब्रह्मानी की चर्चा चलती हैं, तो लोग छन्हीं का पहले नाम लेते हैं। प्रजाबत्सल राजाओं में वही सुख्य गिने जाते हैं। साराथ इनसे अध्यालन-विद्या सीख कर अपने की परम प्रतिश्वित मानता है। पाककर्ता उनसे रसोई वनाना सीख कर अपना महत्त्व प्रकट करता है। वे सर्वगुणभूषित व्यक्ति कौन हैं? क्या वे इतिहासोक्त प्राचीन काल के कोई महात्मा हैं या आधुनिक कोई दर्शनीय पुरुष हैं? जो कोई हों वे मेरे वन्दनीय हैं।" इस प्रकार नल को न देख कर, केवल लोगों के मुँह से उनकी प्रशंसा सुन कर इमयन्ती को उन पर खासाविक मिक उत्पन्न हुई।"

एक दिन महल के भीवर एक वपस्विनी आई'। वे बाल-महाचारियी थीं। वेदवेदाङ्ग का तत्त्व जानने वालीं श्रीर तपश्चर्या के प्रमान से अप्रिशिसा के सदश तेजस्त्रिनी थीं। वे तीर्थपर्यटन कर रही थों । राजा भीम और उनकी रानी के धर्माचरण की प्रशंसा सुन कर वे उनको दर्शन देकर कृतार्थ करने आई थीं। **उनके श्राने की ख़बर पाकर श्रनेक पुरवासिनी श्रीर राजा के** महल की कियाँ देवालय में उनसे मिलने गईं। तपखिनी उन सबें से भ्रपने तीर्थ असण का वृत्तान्त कहने लगीं। उत्तरीय हिमाज्य के बर्फ से ढँके हुए शिखर पर उन्होंने किस तरह गैारी-पाडुर की प्राराधना की बी, (जो स्थान प्रव भी उनके नामानुसार गौरीशृङ्ग के नाम से विख्यात हैं) दिचया समुद्र के किनारे जहाँ भगवती की कुमारी मूर्ति खापित है, जहां महासमुद्र फेनरूपी खेत पुष्पाश्वलि से दिन रात देवी की पूजा करते हैं, वहाँ का ग्रुत्तान्त श्रीर उत्तर हिमालय से दिच्या कुमारी श्रन्तरीप तक भारतवर्ष के कितने ही तीर्थों की कथा उन्होंने कही। पुरवासिनी ख़ियों ने जी लगा कर बड़े आअर्थ भाव से उन सब तीओं का माहात्म्य सुना । पश्चात् विनयपूर्वक तपस्विनीजी को प्रणाम करके सब श्रपने श्रपने

घर गईं। केवल रानी, दमयन्तो भीर जनकी दे। एक दासी वहाँ रहीं। तपितनी ने दमयन्तो की भीर लक्ष्य करके रानी से कहा— "यह जो सकल सुलचेशों से युक्त कुमारी तुम्हारे पास वैठी है, यह तुम्हारी कीन होती है ?"

रानी—''यह मेरी वेटी है। दमन मुनि के आशीर्वाद से मैंने यह कन्या पाई है, इसीसे इसका नाम दमयन्ती रक्ता है।"

माता का इशारा पाकर दमयन्तो ने तपस्तिनी का पैर छूकर प्रयास किया। वपस्तिनी नं उसे आशीर्वाद देकर रानी से कहा—
"तुम भाग्यवती हो, जिससे ऐसी कन्यारल प्रसव की है। इस आदर्श कन्या के गुख से तुम्हारा वंश चिरस्मर्याय होगा। देखती हैं, लड़की व्याहने योग्य हो गई। क्या कहां इसके व्याह की बात स्थिर न मुई है ?"

रानी---''नहीं, श्रभी ते। स्थिर नहीं हुई है। यही एक छड़की है। कहाँ, किसके हाथ इसे दूँ, इस चिन्ता से हम श्रीर महाराज देानी बराबर उद्विग्न रहते हैं।"

तपस्तिनी—"मैं बुम्हारी कन्या के थोग्य एक सर्वगुणी वर वता सकती हूँ। मैंने कितने ही देश देखे हैं। कितने ही राजा भीर राजकुमारों से मेरी जान पहचान है। किन्तु कुल, शील, धन, विद्या श्रीर यस में इस कन्या के थोग्य वही एक राजकुमार मेरी दृष्टि में सर्वोत्तम जैंचता है।"

रानी बत्सुक द्वेत्तर वेत्ति—''चे कैंनि ?'' तपित्वनी—''चीरसेन के पुत्र निषषदेश के राजा नल ।'' रानी—''हम सब भी बहुव दिन से उनका नाम सुनती हैं, किन्तु वे कदाचित् इस सम्बन्ध को खीकार न करें, इस भय से महाराज उनके पास दृत नहीं भेजते।"

तपस्विती—"घेटी ! जो ब्रह्मचर्य त्रत धारम करेंगे, उनकी वात ही जुदी है, किन्तु जो गृहस्थ धर्म का पालन करना चाहते हैं वे तुम्हारी इस कन्या को कदापि अस्वीकार नहीं कर सकते । तुम्हारी यह कन्या केवल रूपनवी ही नहीं है, इसके मुँह पर जो अलीकिक भाव है, वह मैं ध्यान के समय केवल भगवती ही के स्वरूप में देखती हूँ, अन्यत्र कहीं आज तक देखने में नहीं आया।"

रानी—''यह मेरी लड़की है। इसकी प्रथंसा मुक्तको नहीं करनी चाहिए। पर आपका कहना सत्य है। ऐसी सुगीला, भक्ति-मती, सुदृद्धि और गुख्नती बालिका मैंने भी नहीं देखी।''

तपस्विती — "मैं तुम्हारे यहां से बिदा होकर निषध राजधानी को जाऊँगी, यह पहले ही से मेरी इच्छा थी। राजा नल से मेरी जान पहचान है। यदि तुम्हारी सम्मति हो तो मैं वहाँ तुम्हारी कन्या के स्वाह की बात प्रसंगवश चलाऊँ।"

रानी — ''श्राप जो जिस्त समर्भेगी, उसमें स्था मेरी श्रस-म्मित हो सकती है ? यदि श्रापकी छुपा से मेरी दमयन्ती सुपात्र के हाथ पड़े तो हम सब कृतार्थ होगी।''

तपस्विनी—''तो अब शोघ ही यहाँ से विदा हूँगी। कल सबेरे मैं निषधदेश की यात्रा करूँगी।"

रानी श्रीर ६भयन्ती तपस्विनी को प्रणाम करके अपने महल को खाई'!

उसी दिन से दमयन्ती के हृदय में अब्द धीर ही भाव का उदय हुआ। जो दमयन्ती नल की मक्ति की पात्री थी, वह प्रव उनके प्रतुराग की पात्री हुई। जो इतने दिन नल की अक्तिमात्र से दूप होती थी वह भ्रव उनके दर्शन के लिए उत्सक होने लगी। पहले जा उसके मन में यह भ्रम या कि नल इतिहासप्रसिद्ध पूर्व-काल के कोई राजा होंगे, वह मिट गया। सत्यवादिनी तपस्विनी में जा कहा है वह कभी व्यर्थ नहीं हो सकता। उसने मन में निश्चय किया कि वही (नल) उसके पति होने योग्य हैं। माता पिता की भी उसे नल के हाथ सौंपने में कोई आपित न थी; इस त्रिए ऐसी प्रवस्था में नई उन्न के धर्म से जो भाव उत्पन्न होना स्वाभाविक है, नल के ऊपर दमयन्ती का भी वही भाव उत्पन्न हुआ। नल को देखने और उनके सम्बन्ध की बात बार बार सुनने की वह वड़ी भ्रमिलापिया हुई । क्रमशः नल की चिन्ता ने सम्पूर्य-रूप से उसके हृदय पर अधिकार कर लिया। ट्सरी वात की चर्चा वसे न सहाती थी। वह दिन रात नल की भावना में पड़ी रहती थी। वह यही सोचा करती घो, हाय ! मनुष्य मनुष्य को विना देखे क्या उस पर इतना अनुराग कर सकता है १ मैं जिन पर अपने को समर्पेश कर चुकी हूँ, क्या वे एक बार भी मेरा स्मरश करते होंगे? स्मरण की कीन वात उन्होंने मेरा नाम तक भी न सुना होगा। हाय ! यह मैंने क्या किया ! एक अपरिचित व्यक्ति को क्यों श्रपना चित्त दे दिया ?"

कवियों का कथन है कि वियोगावस्था में प्रेमिक प्रेमास्पद का ध्यान कर तन्मय हो जाता है, यथा— ः "संगमिवरहिवकत्से वरिमह निरहो न संगमस्तस्याः ।

मिलने सैव यदेका त्रिभुवनसिप तन्मयं विरहे ॥"

दमयन्तो प्रत्येक पदार्थ में नल की काल्पनिक मूर्ति देखती

थी । कोई कुछ वोलावा था तो उसमें वह नल ही को बात सुनती
थी । पित्त की इसी अवस्था में उसने एक दिन अन्तः पुर की
अपवाटिका में एक विचित्रवर्थ के इंस को पकड़ा । वह प्राय-भय से
अपनी जाति-भाषा में कुछ वोला । दमयन्ती ने सममा, वह नल
की कोई बात कह रहा है । इससे स्वाई होकर उसने उसे छोड़
दिया । वह मधुर शब्द बोलता हुआ उत्तर तरफ़ उड़ चला । दमयन्ती ने सममा, "इंस उसका संवाद देने के लिए निषय देश को
जा रहा है।"

इधर तपिखतीं को मुँह से दमयन्त्री के रूपगुण की प्रशंसा सुनकर नल भी तद्गतप्राण हो रहे थे। स्वभावतः संयतिष्त होने पर भी कार्य करते समय उनका अन्तर्गत साव प्रकट हो जाता था। बृहे राजमन्त्री ने देखा, राजा पहले की अपेचा अन्यमनस्क रहते हैं, उनका चित्त चन्धल रहा करता है। किसी कठिन प्रश्न के विचार में उनका जी नहीं लगता। रात में उन्हें नींद नहीं धाती। इसलिए फिसी किसी दिन होम का समय टल जाता है। वे कभी कोठे की छत. पर अकले बैठकर चन्द्रमा की ओर टकटकी बाँच कर देखते हैं, कभी बिना कारण के लम्बे सीस लेते हैं। उनके प्रसन्न सुख पर सदा उदासी छाई रहती है। वे दिन दिन दुर्वल होते जाते हैं। उनके ललाट पर चिन्ता का चिह्न और आंसे आंस् से भरी हुई दिखाई देती हैं। मन्त्री ने अनुमान किया, ये सब प्रसुराग

के लच्छा हैं। किन्तु जितेन्द्रिय महाराज नल के लिए परस्रो चिन्ता तो कभी संमव नहीं, तब महाराज जिस पर श्रांतुरक्त हुए हैं वह भाग्यवती कुमारी कीन है ? वे कुछ निश्चय न कर सके श्रीर नल की दिन दिन राजकार्थ में उदास देखकर वहुत ज्याप्र हुए।

तपस्विनी ने नल के विषय में जो वार्ते कही थीं, राजा भीम ने रानी के मुँह से सब सुनी । किन्तु नज़ की जपयुक्त पात्र जानकर भी वे उनके पास कन्या के विवाह का प्रस्ताव न कर सके। उन्होंने रानी से कहा--"प्रियं ! याचक रूप से कन्यादान के लिए प्रार्थी होना हमारे कुल की रोति नहीं है। हमारे वंश की खड़की के साथ व्याह करने की प्रस्तावना भ्रापद्दी राजा महाराजा करेंगे, उनमें जिसे मैं यांग्य समभूँ गा, उसे सदकी दूँगा।" यही हमारे वंश का नियम है। इसलिए में किसी के पास इस कार्य के लिए दृत[ी] नहीं भेज सक्रोंगा, न किसी से मैं प्रार्थना ही करूँगा। हाँ, एक काम मैं करूँ गा । मैं दमयन्त्रां के स्वयंवर की घोषणा करके भारत-वर्ष के प्रधान प्रधान राजाओं की उस स्वयंवर में चुता मेजूँगा। यदि नल दमयन्ती के साथ ज्यांह करना चाहेंगे ते। वे प्रवश्य ही यहाँ भ्रावेंगे । यदि स्वयंवर की वात जानकर भी वे यहाँ न आवें दी उनसे इस कार्य की बाशा रखना बृधा है। स्वयंवर में ब्राये हुए राजाओं में दमयन्ती जिसे पसन्द करेगी, जिसके कण्ठ में वरमाला डालेगी हम उसी के साथ उसका व्याह कर देंगे।"

रानी ने राजा के इस विचार की पसन्द किया। भीम ने सभासद द्यौर मन्त्रियों की बुद्धाकर स्वयंवर रचना की झाड़ा दी। बात की बात में राजकुमारी के स्वयंवर की बात सारे नगर में फैंब

गई। नगनिरवासियों के अपनन्द की सीमान रही। घर घर में मङ्गुलाचार होने लगा । स्वयंवर का सुयोग संयोग से संघटित होता हैं। इसिलए सफल साधारण लोग बढ़े उत्सुक हो खयंवर देखने की प्रतीचा करने लगे। क्रमशः स्वयंतर में आये हुए देश देश के नरेश थ्रीर उनके भ्रजुचरवर्ग से सारा कुण्डिनपुर भर गया। नगर के चारों थ्रोर मैदान में हज़ारों ख़ेमे खड़े हुए। घोड़ों की हिन-हिनाइट, हाथियों की चिंघाड़, और सेनागर्थों के कोलाइल से द्याकाशमण्डल प्रतिष्वनित होने लगा। घर घर में **उस्तव का चि**ह्न दिखाई देने खगा । तोरण बन्दनवार से सड़कें सजाई' गई'! द्कानदारों ने बाज़ार को धनेक प्रकार की माँगलिक क्लुएँ ध्रीर दीपमालाओं से विभूषित किया। सारी नगरी इस महोत्सव से एक भ्रपूर्व शोभा की ख़ान सी बन गई।

ध्याज स्वयंवर का दिन हैं। राजभवन के सामने की सड़क पर लोगों की बड़ी शीड़ हैं। जिघर देखिए उघर ही फुंड के फुंड लोग दिखाई देते हैं। स्वयंवर देखने के लिए नगरिनवासी आवाज-रुद्ध सभी उचल पड़े हैं। निमन्त्रित राजा, राजकुमार, कोई हाथी कोई घोड़े ग्रीर कोई रुष्य पर चढ़कर बड़ी सजधज से राजभवन की धोर स्वयंवर के सभामण्डप को सुरोगियन करने के लिए धा रहे हैं। उन लोगों की सवारी धीर भूष्य वसन आदि नगरिनवासियों के आलोच्य विषय हो रहे हैं। किसका हाथी सब से ऊँचा है, किसका घोड़ा सब घोड़ों में तेज़ और सुन्दर है, किसकी पाड़ी धीर हुपट्टे कैसे मूल्यवाल हैं, इन वातों को लेकर पुरवासीगण धापस में वादानुवाद कर रहे हैं। कोठे की उत्त धीर मरोखे पर

खड़ी होकर पुरवधू फूलों की वर्षा कर रही हैं। साथ ही इसके देा एक नवयुवतियाँ टूटे दाँव पके केश राजा की विवाहार्थी देख कर उनकी हैंसी उड़ा रही हैं। पहरेदार जहां तहीं खड़े हो हाथ में वेंत की छड़ी लेकर वड़े कष्ट से शान्ति-रचा कर रहे हैं। प्रासाद के सम्मुख समतल भूमि में स्वयंवर का सभामण्डप वना है। सोने से मढ़े हुए विशाल खन्भों पर बहुत वड़ा सुन्दर शामियाना खड़ा है। खन्मे; भांति भांति के फूल-पत्तों और मालाओं से सुशोभित हैं। खयंवर का स्थान सुवासित जल से सींचा हुमा है। बीच में मार्ग है। मार्ग के दोनों श्रोर बहुसूल्य कुरसियों की कवारे लगी हैं। निमन्त्रित राजगरा प्रपनी चटकीली पेशाकों से दर्शकों की आँखें में चका-चैंांघ पैदा करते हुए उन कुरसियों पर कैठे हैं। इत्र श्रीर गुलाव के सुगन्ध से सभागृह भामोदित हो रहा है। सुन्दर पोशाक पहने नववयस्क नौकर सोरछत्न श्रीर चॅवर लेकर अपने अपने राजा के पास खड़े हैं और धीरे धीरे भक्त रहे हैं। राजद्वार के सामने नीवत-खाने में भाति भाति के मङ्गलवाय वज रहे हैं। कब राजकुमारी सभा में आवेगी, सब लोग सिर उठाकर उसी की राह देख रहे हैं। इघर महल के भीतर दमयन्ती स्वयंवर योग्य वेश-विन्यास कर माता को प्रणाम करके समा में ले चलने वाली दासी के धाने का इन्तज़ार कर रही थी। इतने में एकाएक उसके घर का द्वार

कर माता को प्रणाम करके सभा में ले चलने वाली दासी के धाने का इन्तज़ार कर रही थी। इतने में एकाएक उसके घर का द्वार खुला ग्रीर एक परम सुन्दर युना पुरुष दूसरों की ग्रांख बचा कर वहाँ ग्रा पहुँचा। उसके रूपलावण्य से सारा घर प्रकाशमान हो गया। उसे देख कर दमयन्त्री को बढ़ा आश्चर्य हुआ, उसने मन में सोचा, मनुष्यजाति में ऐसा रूप सम्मव नहीं। ये ज़रूर कोई देव- कुमार होंगे। यह सोच कर उसने आगन्तुक को हाथ जोड़ कर प्रणाम किया। आगन्तुक दमयन्त्री के रूपलावण्य से विमुग्य होकर निर्मिण नेत्र से असको देखने लगा।

दमयन्ती वोली—"श्राप कीन हैं ? कन्या के अन्त:पुर में श्रप-रिचित पुरुष का श्राना मना है । क्या श्राप यह नहीं जानते ?''

झारान्तुक—''में देवताश्रों की प्रेरणा से आपके पास झाया हूँ। देवता का झादेश ले जाने बाले को कहीं जाना मना नहीं है। में जो कुछ कहने के लिए झाया हूँ वह कह कर तुरन्त यहाँ से लीट जाऊँगा।''

दमयन्ती—"यदि देवताओं की सेरे प्रति कुछ आज्ञा हो तो छपा कर कहिए।"

ध्यागन्तुक—देवराज इन्द्र, श्रिप्त, धर्मराज ध्रीर वरुष ध्रापके ध्रुतुपम सीन्दर्य की वात सुन कर ख्यंवर के समामण्डप में ध्य-श्चित हुए हैं। उन्होंने ध्रापसे यह कहने के लिए सुम्नको मेजा है कि उनमें घ्राप किसी एक को पति बनावें। कोई मानवी जिस सुख ध्रीर जिस सीमाग्य की कभी अधिकारियी न हुई, वह ध्रापको ध्रमायास प्राप्त होता है।"

दमयन्ती—''देवदूत । देवगण गेरे पूरूप हैं। मैं उन्हें हाथ जीड़ कर प्रणाम करती हूँ । साधारण मनुष्य की तरह कन्या की इच्छा करने वे अपने देवत्व की क्यों कहाङ्कित करना चाहते हैं ?''

श्रागल्तुक—"देवगख सदा से जातिषर्स की ग्रेगर दृष्टि म देकर गुख के पचपाती हैं। इसीसे देवराज ने देख की वेटी शची से ग्रीर ग्राग्नि देव ने माहिष्मतीपुरी के राजा की वेटी स्वाहा से व्याह किया। आप चाहें वो शाची और खाहा की माँति देवी का पद महत्य कर सकती हैं। कठिन वपस्या से भी वो स्वर्गसुख दुर्त्तभ है, उसका आप खाग न करें। जब खबें देवगम प्रार्थी होकर आये हैं, तब जनका अनादर करना जनिव नहीं।"

दमयन्ती—''चमा कीजिए, बहुत बात बढ़ाने की ज़रूरत महों। आप देवताओं से मेरा प्रधाम निवेदन करके कहिए, मैं पहले ही एक व्यक्ति को पितरूप से वरण कर जुकी हूँ। उनके ज्ञाम की आशा ही से मैं अभी खयंवर में जाना चाहती हूँ। देवता, दानव या गन्थवें जो हों, अब किसी दूसरे को स्वीकार करने से मेरा सतीत्व जाता रहेगा। देवशब धर्म के रचक हैं, जिसमें

मैं ध्रपने संकल्पित पति पा सकूँ वे ऐसा द्वी धाराजित करें।"

धागन्तुक का खुँ इ राहुम्सा चन्द्रमा की भाँति मिलन हो

गया। उन्होंने पूछा—"आपने जिनको मन से वरस किया है, वे

कैं।न हैं, क्या उनका नाम मैं जान सकता हूँ ?"

दमयन्त्री— ''आप देवदूत हैं। देवनाय अन्तर्यामी होते हैं। इसिताय आपसे अपने मन की बात कहने में चित क्या ? मैं निवब-देश के सहाराज नक्त की मन ही यन पितमाय से स्वीकार कर चुकी हूँ।''

श्रागन्तुक का चेहरा प्रावःकालिक कमल सा सिल गया । उन्होंने गद्गद कण्ठ से कहा—''श्रन्छा, में श्रव जाता हूँ। श्राप का श्रमिप्राय देवताओं से कहूँगा। में ही नल हूँ। देवताओं के श्रुत्रोय से मैंने धनका दूतल स्वीकार किया था और उनका संवाद श्रापसे कहने आया श्राप? इतना कह कर ने वहाँ से अन्तर्हित हुए। उनके ब्राहरय होते ही मानो घर में अन्धकार छा गया। दमयन्ती ब्राध्यर्थीन्वत होकर सोचने लगी—"यह स्वप्न है या देवमाया? यदि सचगुच ये नल ही हों तो इन्हें वरण कर मैं अपने जीवन को सफल समफ़ूँगी।" इसी समय उसकी सखी ने ब्राकर कहा—"राजकुमारी! ब्रापको स्वयंवर में ले चलने के लिए आपकी दासी वाहर सड़ी है, चलिए।"

टमयन्ती इष्टदेव को प्रणाम करके स्वयंवर-सभा की छोर चली ! शंखव्यनि से सारा महत्त गूँज चठा । खियाँ महत्त्वगीत गाने लगीं। भाँति भाँति के बाजे बजने लगे। धन्दीजन उचस्वर से स्तति-पाठ करने लगे। सागध श्रीर सूतगण विदर्भराज का यश वर्णक करने लगे। शुभ घड़ी में दमयन्ती खर्यवर सभा में प्राई। भारत के प्रसिद्ध प्रसिद्ध राजा और राजकुमार समामण्डप में वैठे थे। स्वयंवर सभा के चारों ग्रेगर दर्शकों की ग्रपार भीड़ थी। सभी की दृष्टि एक दमयन्ती ही की द्योर थी। दमयन्ती का दृदय काँपने लगा । उसके देतीं पैर शिथिल से जान पड़ने लगे । वह इष्टदेवता का स्मरण करके धीरे धीरे छागे बढ़ने लगी। सभामण्डप में प्रवेश के साथ उस पर हज़ारों नेत्र एक साथ पितत हुए । सभी लेगि टक-टंकी बाँघ कर उसकी अपूर्व शोमा देखने लगे। राजाओं ने देखा, आगे पीछे अखधारी वीरगण हैं, उनके बीच में माङ्गलिक वस्तुओं को हाथ में लिये मण्डलाकार दासियाँ हैं। उनके मध्य में भूषण-वसन से सुसज्जित दमयन्ती ऐसी शोभा पा रही है, जैसी ताराग्री के बीच में चन्द्रमा शोमा पाता है। दमयन्ती लाल रङ्ग की रेशमी साड़ी पहने हैं, खलाट में चन्दन का तिलक है। सम्पूर्ण शरीर रहा- जिटत सीने के जामुएखों से विसूपित है। केश-पाश में फूल गुँधे हैं। हाथ में फूल की माला है। उसके खड़ू की ज्योति से उसके रक-भूगण मिलन हो रहे थे।

माना तिय तन अच्छ छवि, खच्छ राखिवे काज। हग पग पांछन को किया, भूपख पायन्दाज॥

दमयन्त्री को देखकर राजाओं ने मन में सोचा, इतने दिन बाद विधाता के द्वाच का एक अपूर्व कौश्रत देखा ! ,खूबसूरती का नमूना श्रक्ता श्रत्या है। परन्तु 'असकी ,खूबसूरती वहा है जो पग पग में श्रङ्क की अपूर्व शोभा से दृष्टि को अटका स्क्ले। राजाओं ने दम-यन्त्री का वही रूप देखा ! सब वहीं चिन्ता करने लगे कि न जाने कीन भाष्यवान पुरुष इस अनुषम कन्या-का को पाकर छतार्थ होंगे।"

जिस जगह से समस्य समामण्डण देल पढ़वा या, जब दमयन्वी वहाँ आ लड़ी हुई वन राजपुरोदिव ने दमयन्ती भे पास
आकर आशीर्वादपुर्वेक उससे कहा—"दुम्हारे पिवा के युक्ताने से
भारत के प्रधान प्रधान राजा इस स्वयंत्यमा में आये हैं। यह देखेा,
अङ्ग, वङ्ग, कालिङ्ग, मिथिला, कोश्यल, मगब, काशी, चान्चार,
अवन्ती, पा॰वाल, मझ, कामरूप और सुराष्ट्र आदि देश के नरेश
दुम्हारे अनुत्पर रूपमुख भी बाव सुनकर दुम्हारे पाविष्रमहण के
प्रार्थी होकर यहाँ उपस्थित दुए हैं। तुम्हारे पिवा को इच्छा है कि
इस आगत राजाओं में किन्हें दुम योग्यवम जानी उनके गले में
वरमाला पहनाओं। शिका, संयम और अवान्यल के गुख से तुम
दिवाहित के झान में कुशला हो, इसीलिए दुम्हारे पिवा ने तुम्हारे
ही करर यह मार दिया है। प्रवीख राजमाट दुमकी सभास प्रयोक

राजा का परिचय हेंगे । सुनकर और पूर्वापर विचार कर तुम ग्रपने थोग्य पति को वरख करो।"

राजपुरोहित यह कहकर चुप हो रहे। साथ ही जनकोला-हल ध्रीर वाजे बन्द हुए। दमयन्ती घात्री के साथ पहले प्राग-ज्योतिपपुर के राजा के पास गई । राजमाट इनके पास मा खड़ा हुआ । वह बूढ़ा या, उसके सिर के बाल सफेद थे। चमड़ा सिकुड़ा हुआ था। वह पीत वस्न पहने था। गुलाबी रङ्ग की चादर कन्धे पर डाले या । उसके ललाट में त्रिपुण्डू चन्दन शोभित था। सिर पर ख़ुब वही पगड़ी शोभा दे रही थी। हाथ में एक सोने की छड़ी थी। प्रत्येक राजा की वंशावली और सुयश उसे मालूम था। उसने प्रागुज्योतिषपति को लच्य करके वसवन्ती से कहा, ''राजकुमारी प्रापके सामने जो ये इन्द्रतल्य प्रस्प बिराजमान हैं, इनका नाम सामदत्त है। ये प्रागुज्योतिषपुर के राजा हैं। इनके बाहुबल से पराजित होकर दुईम्य किरातों ने इनकी प्रधीनता खीकार कर ली। इनके दन्तार हाथी ऐरावत के समान बलवान हैं। अगर आप इन्हें खीकार करेंगी ता नगर के प्रवेशकाल में किरात की क्षियाँ नाच गाकर ध्रापकी अभ्यर्थना करेंगी ग्रीर श्रापको प्रसन्न करेंगी। जब श्राप इनके पर्वत की चोटी पर वने हुए प्रासाद के ऊपर खड़ी होंगी तब ग्राप ऐरावत पर श्रारूढ़ इन्द्रांखी की तरह शोभा पावेंगी।"

यह सुन कर दमयन्ती ने एक वार उत्सुकत्त्यन से प्राग्च्यो-तिषपति को देखा और उनको नमस्कार करके आगे बढ़ने के लिए क्षासी को इशारा किया। दासी वहाँ से मिश्रिलाषीय के पास ले गईं। राजमाट कहने लगा — "राजकुमारी! मृपमण्डली में ये जो श्राकृति श्रीर स्थाव में ब्राह्मण के सहाराज तृषण्डल हैं, ये मिश्रिला के महाराज तृषण्डल हैं, जो आपके करप्रहण की अभिलापा से यहाँ आपे हैं। इनका दरवार श्रीत्रय ब्राह्मणों से बराबर मरा ही रहता है, श्रीर इनके अपिहोत्र का घर कभी होम के छुवें से खाली नहीं रहता। युड़ापा आ जाने पर भी ये कठिन से कठिन ब्रत करने में कभी आलस्य महीं करते। सक्षीक होकर घर्माचरण करने का विशेष फल है, यह सोच कर सन्तान रहते भी थे फिर विवाह करना चाहते हैं। प्रति दिन सामगान सुन कर यदि आपको सबेरे शब्या लाग करने की इनका हो तो आप इनको वरें। अगस्य सुनि के बाम भाग में जोपासुडा की भीति आप भी यहस्थल में इनके पास बैठ कर श्रीभा पावेंगी। ।"

दसयन्ती ने सिथिलाधीश के दर्शन कर द्वाय जोड़ उन्हें प्रयास * करके दासी से अन्यन्न चलने का संकेत किया।

दासी दमयन्त्री को लेकर मगद के राजा व्यतिमान के पास गई। ध्रम्यान्य राजा ब्रह्मुक विच्त से ब्रस्त वेखने लगे। साट ने दमयन्त्री से कहा—"'पर्वतों में जैसा विल्व्य, ब्रुचों में जैसा साखू, कैसे ही राजाओं में ये मगधक महीप व्यतिमान हैं। इनका दुर्पेष वल-पराक्रम, इनके खरूप से ही प्रकट हो रहा है। वृषम के कन्ये की मांति इनका मोटा कन्या, किवाइ के वस्त्रेसी चीड़ो हाती, और हाथी के सूँइ सी इनकी मोटी वाई कैसी शोमा दे रही हैं। इनसे वाहुयुद्ध में हार कर कितने ही वह बढ़े नासी पहलवान

इनके चेले वने हैं। इनकी राजधानी पहाड़ों के बीच में सुशोभित है। पहाड़ ही इनके किले का काम दे रहे हैं। अनेक बार शत्रुओं से आकान्त होने पर भी कभी इनकी राजधानी दूसरे के हाथ में न गई। यदि आपको वीरपत्नी कहलाने की एकान्तवासना हो तो आप इनको परिस्त में अहला करें।

दमयन्ती ने सिर नवा कर ऋषिमान को नमस्कार किया। वासी राजकुमारी के मन का आशय समम्म कर उसे कोशलाधीश मीनकेतु के पास ले गई। वमयन्ती ने सुन्दर वेशधारी मीनकेतु को एक बार पत्नक उठा कर देखा।

भाट ने कहा—''राजकुमारी ! जिस कोशल देश की दिचा सीमा में पवित्रसत्तिला गङ्गा की धार है और जिनकी राजधानी के पास सरयू नदी प्रवाहित है, उसी कोशल देश के राजा ये मीनकेतु हैं। इनकी राजसमा नर्वकीगर्खों के नाच गान से सदा ब्ह्रासित होती रहती है। जाड़े के समय में रहने के लिए इन्होंने सरयू के किनारे श्रीर प्रीष्मवास के लिए गङ्गा-तट पर जे। विशाल भवन वनवाया है, संसार में उनके नोड़ का मकान देखने में नहीं ब्रासाः। पत्नियों के .साथ ये कभी सरयू तीर के उपवन में विद्वार करते हैं। कभी गङ्गा .में जलकीड़ा करते हैं। दासीगय तुरन्त के खिले हुए फूलों से इनकी शाज्या सुवारती हैं। इनके राजमवन से निकले हुए कस्तूरी के सुगन्ध से सारा नगर सर्वदा आमोदिव होता रहता है। इनको उपवाटिका जो सरयू किनारे सुशोभित है, वह अपनी शोमा से इन्द्र के नन्दन कानन को भी पराजित कर रही है। यदि आप इन्हें पतिभाव से

स्वीकार करें तो इन्द्राणी भी जिस ख्वान में विहार करने की लालसा स्वती हैं आप उसकी अधीखरी हैंगी।³²

इसी समय दूर से नल को देख कर दमयन्ती कोशलेश की नमस्कार करके उनके पास जाने को उदात हुई।

यह देख कर दाली ने कहा—''राजकुमारी ! आपकी धाई ओर एक खीर राजकुमार हैं, उनको अविक्रम कर धारो जाना खिल नहीं, इससे वे अपना अपमान सममेरी।'' यह सुन कर दमयन्ती लजा गई और दासी के साथ उस राजकुमार के पास जा खड़ी हुई।

भाट ने कहा-"राजनन्दिनी ! श्रापके सामने जो ये सुराष्ट्र देश के राजकुमार इक्सरय विद्यमान हैं, इनका रय इक्स धर्यात् सोने का वना है, इसी से इन्होंने यह दुर्त्वभ उपाधि पाई है। इनका राज्य समुद्र तक फैला हुआ है। इसलिए क्या जल, क्या चल, जहाँ जो दुर्लभ रत्न खरान होता है, वह सब इन्हीं के पास झाता है। भाप इनकी ओर एक बार शांख उठा कर देखें वा मालूम होगा, इनकी पगड़ी का हीरा शक्र-भट की भाँति कैसा चमचमा रहा है। इनके कण्ठ में हरित मिया की माला वसन्तकाल की लगा की तरह श्रपूर्व शोभा दे रही है। इनकी बाँड में पद्मराग जटित केयर, हाय हाथ में नीलमिक जटिव सीने का कहा और कानों में मोती से मण्डित क्रण्डल की शोभा देखते ही वन ग्राती है। यदि ग्राप इनको वरण करें तो ये अपने माण्डार का सर्वोत्तम रलसमूह श्राप को देंगे। जब श्राप उन रहों को घारण करेंगी, तब मानव जाति की रानियों की वात दूर रही कुवेर की ओं भी भ्रापकी समता नहीं करेंगी।"

भाट की बात सुन कर दसवन्तों के दोठों पर कुछ हैंसी था गई। उसने दासी से कहा—"चलों, सभामण्डण के उत्तर थ्रोर चलें।" दासी "जो आपकों इच्छा" कह कर उसके पीछे पीछे चली।

इस बार दमयन्त्री नल के सामने आई। वहाँ आते ही उसके सारे शरीर में रोमाश्व हो आया। उसकी इच्छा हुई कि एक वार नज को अच्छी तरह देख जें, किन्तु खजा ने 'ऐसा करने न दिया। तो भी वह कनिखयों से देख कर समक्ष गई कि क्रळ. देर पहले जो देवटूत वन कर उसके अन्तःपुर में गये थे, थे वही हैं। किन्तु प्रभी स्वयंवर के योग्य पोशाक में वे थ्रीर भी सुन्दर दिखाई देते थे। चतुर माट दमयन्ती के मुँह का माव देख कर बोला-"ये जो असन्त सुन्दर चनवर्ती के जचग्र से यक्त कसनीय पुरुष आपके सामने वैठे हैं. यही विख्यातकीर्ति... निपध देश के महाराज नल हैं। ब्रह्माने सव गुर्थों को एकत्र दिखलाने ही के लिए इनको सिरजा है। संसार में विशेष से साधारण तक ऐसा कोई काम नहीं जिसमें ये कुशल न हीं। वेद-वेदाङ्ग शाखों पर इनका पूर्व अधिकार है। रख चलाने ग्रीर रसेाई बनाने में भी ये वहे दन्त हैं । इनका रूप, युनापन, कामिनीजनेां के मने।हर होने पर भी ये जितेन्द्रिय हैं, दण्ड देने का सामर्थ्य रखते हुए भी ये चमाशील हैं। ये अपने वाहुनल और अपने पवित्र श्राचरण इन दोनों गुओं से शत्रुत्रों को जीते हुए हैं। श्रपने प्राण का कुछ सोह न करके ये निपद्श्रस्त शरणागतों की रक्षा करते हैं। सत्य के अनुरोध से ये अपना अभीविकर कार्य करने में भी विमुख

नहीं होते। कर्वन्य के पालन में ये अपने द्वानिलाम का निचार न करके जो जिनत सममते वह अवश्य करते हैं। रूप, गुरा और शील में ये सर्वदा आपके उपयुक्त हैं। यदि आपकी इच्छा हो तो इन्हें पति बनावें।³⁷

त्रील में ये सर्वेदा आपको रुप्युक्त हैं। यदि आपको इच्छा हो तो इन्हें पित बतावें।"

इसयन्त्री ने भाट की वात सुन कर प्रसन्न दृष्टि से नल को वेखा। उनके गले में बरमाला डालने के लिए उसका हाथ किच्चित् ऊपर को छठा। किन्तु वह एकाएक ठिठक गई। उसका मुँह सूख गया। उसको छावी घड़कने लगी। देशों पैर, काँपने लगे। सिर में पसीने की वूँ दें दिखाई देने लगीं। वह छुछ देर निश्चल माम से खड़ी रही। वासी ने इसका कारण न जान कर पूछा—"राज-

खड़ी रही। बासी ने इसका कारण न जान कर पूछा—"राज-कुमारी! प्रापका मुँह ऐसा उदास क्यों देखती हूँ ?" दमयन्ती ने कुछ उत्तर न देकर केवल चल की निकटवर्री कुरसियों की धोर उँगली उठाई। दासी को कुछ दिखाई न दिवा। किन्तु दमयन्ती

उँगली उठाई। दासी को जुछ दिखाई न दिया। किन्तु दमयन्दी देख रही थी, जिस सम्ब पर नलं बैठे बे, उसके पास ही उनके समान धीर भी चार व्यक्ति बैठे बे। रूप, वयस धीर पोशाक आदि में उन पाँची में जुछ फुर्क नहीं बा। उनमें कीन सद्या नल है, किसके गले में वह वरमाला पहनावे, इस चिन्दा से वह व्याकुल ही रही थी। एकाएक उसे यह बात बाद हो आई कि दूर ने कहा

था, देवगण सुमसे ज्याह करने की इच्छा से खयंवर में आये हैं, तो क्या मेरी परीचा करने के लिए यह उन्हों की माया तो नहीं है ? दमयन्ती दुखी होकर मन ही मन कहने लगी, ''देवगण ! आप धर्म के रचक हैं ! खियों के लिए सतील-वर्म से बढ़ कर कोई धर्म नहीं। जिससे मेरा सती धर्म बना रहे, वह आप करे ।" पताक मारने के साथ दमयन्ती ने देखा, उन पाँचों में चार की सूरत शकल पाँचवें से कुछ विलच्या है। उन चारों की पलके नहीं लगतीं, उनके सिर में पसीना नहीं है, और क़ुरसी पर बैठे रहने पर भी धरती से उन चारों के पैर कुछ ऊपर उठे हैं। देखते ही वह समफ गई कि ये चारों देवता हैं। पाँचवाँ एक सम्रा नल है।

इस प्रकार सचे नल का पता लगा कर दमयन्ती ने प्रफुक्ष मन से उनके गले में वरमाला डाल दी और दासी के हाथ से चन्दन लेकर उनके मस्तक में लगा दिया तथा अर्घ्य से उनके पैर धोकर ं उन्हें प्रयाम किया। साथ ही सखीगण मङ्गल गीत गाने लगीं, पुरेाहित भी शंखध्वनि से सभामण्डप गूँज चठा। भाँति भाँति भी मङ्गलवाद्य वजने लगे। वन्दीगम् खूब उवस्वर से ''जय गगोश मङ्गलकरण्य भावि भाशीर्वाद स्चक देवस्तुति पढ्ने लगे । थोड़ी ही देर में यह शुभ समाचार सारे नगर में फैल गया। सुन कर सभी लोग प्रसन्न हुए श्रीर कहने लगे, "राजकुमारी ने योग्यवर पसन्द किया।" शुभ दिन शुभ घड़ी में नल के साथ दमयन्ती का च्याह हो गया । निमन्त्रित राजगण विदर्भराज से उचित सत्कार पांकर किसी तरह मनोदुःख को दबा कर अपने अपने घर गये। इन्द्रादि देवगए भी दम्पती (नल-दमयन्ती) की आशीर्वाद देकर स्वर्गको गये।

व्याह हो जाने पर नल ने दसयन्तो को साथ ले निषधदेश को प्रस्तान किया। थोड़े ही दिन में दसयन्ती अपने अच्छे शील स्वभाव से प्रजावर्ग और आश्रित जनों की मात्रवत् पूजनीया हुई। धार्मिक स्वी-पुरुषों का समय जिस आनन्द के साथ व्यतीत होना चाहिए, उनका समय भी उसी तरह ज्यतीव द्वोने लगा। यह और प्रताचरण में दमयन्ती अपने पित की सिंद्धनी हुई। विवाह का जो मुख्य उदेश है वह भी सफल हुआ। यशासमय उनके एक पुत्र और एक कन्या उत्पन्न हुई। पुत्र का नाम इन्द्रसेन रक्क्शा गया और वेटी का इन्द्रसेना। दोनों रूप, गुख और शील-स्वभाव में माठा-पिठा के समान हुए।

इस संसार में निरन्तर सुख कभी किसी की न हुआ। सुख को समय किसी के धर्म की परीचा भी नहीं हो सकती। सेाने की जाँच जैसे आग में होती है, वैसे ही धर्म की परीचा विपत्तिकाल में होती है। कहा है:—

"श्रापत्काल परखिए चारी । धीरज धर्म मित्र ग्रद नारी ।"

इमयन्त्री के जीवनकाल में भी एक विषम परीचा प्रारम्भ हुई। उस परीचा में वह भली भाँति उत्तीर्ख हो गई। इसी से पतित्रताओं में उसने श्रेष्ठ आसन पाया। विना परीचा के निरन्तर सुख भोग करने पर भी कीन उसका नाम जानवा?

नल के एक समा आई था, जिसका नाम पुष्कर था। नल जैसे धार्मिक, साधुस्तमाव और जितेन्द्रिय थे, पुष्कर ठीक उसके दिल्लाफ़ था। नह प्रत्यन्त छली, दृष्ट स्त्रमाव और प्रधर्मी था। नल के राज्य और ऐस्त्रमें पर उस दृष्ट के दृति गड़े थे। पितृत्रवा दमयन्ती के ऊपर भी उसकी धुरी निगाइ थी। किन्तु नलपूर्वक नल को सम्पत्ति था दमयन्ती का प्रपद्दरश्च करना प्रसम्भव देख कर उस दुरातमा ने एक चपाय सीचा। वह जुवा खेलने में नल से विशेष पदु था। इस लिए उसने नल को जुए में इरा कर उनका

सर्वस्य हरस करने का सङ्कल्प किया । उस समय के चत्रिय राजाओं

में यह एक रिवाज वा कि युद्ध में वा धूतकीड़ा में बुहाये जाने

पर वे इनकार नहीं करते थे। यदि किसी ने इनकार किया ते।

हैं, उनमें जुद्धा खेलना मुख्य है।

· वह कायर समभा जाता वा और सर्वत्र उसकी निन्दा होती थी। हज़ारों गुख रहते भी नज़ को जुद्रा खेखने का यहा शौकृ या !

राजाच्यों के लिए नीति-शास्त्र में जे। जठारह प्रकार के व्यसन लिखे पुष्कर से बुलाचे जाने पर राजा नख इस व्यसन से श्रपने

को न रोक सके। दोनों में दिन दिन जुवेवाज़ी चक्षने सुगी। नस षारंबार द्वारने लगे। वे जितना ही इरावे थे उतनी ही उनकी पसक जुने की ग्रोर वड़वी जाती थी। भाण्डार के मियामीतियों

से झारम्य कर घोड़े, हाथी, वागु, क्ग़ीचे झीर इसारते तक याजी रख कर नल जुद्या खेलने थ्रीर हारने लगे। क्या दिन क्या रात नज सर्वदा जुम्मा खेलने ही के पीछे हैरान रहते हो। दूसरा कोई काम उन्हें भ्रच्छा नहीं खगता था। उन्होंने राजकार्य करना

एकदम छोड़ दिया। राजसम्बन्धी कार्य में उनकी अनुमति लेने की लिए बूढ़े मन्त्री ब्यप्र होने लगे, पर वन्हें नल फार्वर्शन दुर्लभ हो गया। दमयन्ती शयनगृह में अकेली बैठ कर रात विताती थी। नहा दिन रात में एक बार भी सहस्र के भीतर न त्रातेथे। नल को इस प्रकार व्यसनासक देख कर प्रजागस में द्वाहाकार मच गया। वे सब कहने लगे, महाराज को किल

में आ ऐरा है, नहीं ते। उनकी बुद्धि इस तरह अष्ट क्यों होती ? चालिर एक दिन प्रचा ने मन्त्री की साथ लेकर दमयन्ती के पास

जाकर निवेदन किया-"माँ ! राज्य हाथ से चला जा रहा है. आप महाराज से समभा कर न कहेंगी वी कुछ न वर्चगा।" दम-यन्त्री नल का दर्शन कहाँ पाती जो उनसे कुछ कहती। एक दिन संयोग से उनसे मेट होने पर उसने श्रांसू भरी श्रांकों से सब वातें कह सुनाई और श्रन्त में उनके पैरी पर गिर कर रोने लगी। किन्तु इससे कुछ फल च हुआ । नल कुछ देर उदासी के साथ दमयन्ती के मुँह की ग्रीर देखते रहे, इसके वाद विना कुछ कहे धुतशाला में जाफर पुष्कर के साथ फिर जुवा खेलने लगे। दमयन्ती के हृदय में गड़ी चीट लगी । वह हाथ जीड़ कर पति की सुमति देने के लिए देवताओं से प्रार्थना करने लगी । वह समभ्र गई कि महाराज की जुने में जैसी आसक्ति उत्पन्न हुई है उससे कुछ न वचेगा, धीरे धीरे सब मुफ्तर के हाब में आयगा।" पति के साथ दु:ख भोगने के लिए वह तैयार हो रही । किन्तु छोटे से वालक श्रीर वालिका दुःख न सह सकेगी, यह सोच कर उसने उन्हें अपने पिता के घर भेज दिया।

इधर नल ने जुनेवाज़ी में अपना सर्वस्व खो दिया। राज्य, धन जो कुछ या सब हार जाने पर ने अपने भूएखा, वका, धतुप-वाख तक जुने में हार गये। पुष्कर की इच्छा थी कि नल अपने को और दमयन्त्री की भी बाज़ी पर रक्खेगा, किन्तु नल ने ऐसा न किया। पुष्कर ने नल की जुने में जीत कर कहा—"मूर्ली! तुम अब यहाँ क्या करते हो ? तुम्हारे पास जो कुछ था, तुम सब हार गये। अब यह राज्य भेरा हुआ, तुम यहाँ से कुच करो।"

नल ने कुछ प्रापित न की, तुरन्त राजमबन लाग दिया, पति-

प्राणा दमयन्ती पहले ही से तैयार थी, पति को जाते देंल वह भी उनके पीछे पीछे चली । राजा और रानी को राजधानी छोड उस ग्रवस्था में जाते देख नगरनिवासी लोग श्रार्वनाद करने लगे। घर . ेघर में उदासी छागईं। किन्तु दुष्ट पुष्कर ने घेषणाकर दीथी कि जो कोई नल और दमयन्ती को किसी तरह का सहारा देगा उसे प्राग्रदण्ड दिया जायगा । इसलिए प्रजाहितैषी नल ने किसी की. सहायता स्वीकार न की । उन्होंने नगर खाग कर घेार जङ्गल में प्रवेश किया। उनके मुकुटरिहत मस्तक पर प्रचण्ड सूर्य की किरग्रें पढ़ रही थीं। कमल से कोमल पैरी में बहुत बचा कर चलने पर भी क्रश काँटे गड़ जाते थे। तो भी दोनों धीरे धीरे आगे की स्रोर बढ़ने लगे। जुबे का बुरा परिखाम सोच कर नल का हृदय प्रधा-ं त्ताप से दश्य होते लगा । वे सीचते बे-"मैं ही वेचारी दमयन्ती के इस कप्ट का कारण हूँ।" किन्तु दमयन्त्री के मुँह पर विषाद का कुछ चिह्न न या। कहीं उसे उदास देख कर नल और भी लुक्तित श्रीर अनुतप्त, न हों, इस भय से वह श्रपने हेश की यथासाध्य छिपाने की चेष्टा करती थी । वह कभी जङ्गली पेड़ पैाधे श्रीर लुताक्रीं का नाम पूछ कर कभी निपध देश यहां से कितनी दूर है. भ्रादि श्रनेक प्रश्न करके न**ल के मन को भुलाने की चे**ष्टा करती थी। किन्द्र नल को श्रपनी मूर्खैता की बात कब भूलने वाली थी। वे दमयन्ती से वार वार कहने लगे—''ध्यारी ! मैं ही तुम्हारे सब करों का मूल हूँ । यदि तुम मेरे ऐसे दुवींघ को वरण न करतीं तो आज तुम्हें यह कष्ट भोगना नहीं पहता !" दमयन्ती ने कहा—"नाथ ! क्या पत्नी पति के केवल सुख की: दी साथिन है ? हुख की नहीं ? सुख के समय श्रापने सुमको त्रत में श्रीर यहा में सद्द्विमीयी का जासन दे कर अच्चय पुण्य का भाग दिया तो श्राज श्ररण्यवास के समय श्राप मेरे लिए इतने श्रयीर क्यों हो रहे हैं ? श्रापके साथ यह बनवास मेरे लिए खर्ग वास के तुस्य है। श्रापको कुछ होश न हो, यहीं मेरे मन में भारी चिन्ता लगी रहती है। में श्रपने लिए ज़रा भी चिन्ता नहीं करती। श्राप प्रसन्न रहें तो सुके क्या हु:ख है ? श्राप जहाँ सुखपूर्वक रहेंगे वहां में भी रह कर सुख से समय विवाजँगी।"

दमयन्ती धीर नल क्षेत्रल एक पहरने का क्षपड़ा लेकर जङ्गल में धाये ये। जब निपत्ति का दिन धाता है तब जुद्धि भी भ्रष्ट हो . जाती है—

> "प्रायः समापन्नविपत्तिकाले भियोऽपि पुंसां मलिना भवन्ति।"

एक दिन नल सोने के रंग की विचित्र चिड़िया पकड़ने के लिए जाकर अपनी कोती गर्वा आये। उन्होंने घोती फेंककर चिड़ियों को फेंसाना चाहा। चिड़िया घोती लेकर चड़ गई। तव दमयन्ती ने अपनी साढ़ी का आधा भाग करके नल को पहरने के लिए दिया। देंगों वड़े कप से आगे वहें। वन के तीते कड़वे फल मूल खाने, पेड़ के नीचे या गिरिगुफा में सीने और मार्ग चलने से देंगों के गरीर सूख गये। इस पर विपेले कोड़े और मिन्त्यों के काटने से उन्हें बड़ा कप होता था। मारे चिन्ता के रात को उन्हें नींद म आती थी। दमयन्ती की आँख लगने पर भी

नल जागते रहते ये श्रीर सोचवे थे, "हाय ! किवने दिन श्रीर इस

तरह क्टेंगे ?" कब इस विपत्ति से छुटकारा पावेंगे ? हा ! क्या थे ग्रीर क्या हो गये ? कभी वे सोचवें थे, ''पुष्कर ने जुवे में मुभको हरा कर सर्वेख हर लिया। यदि मैं भी उसे जुने में हरा सकूँ, तभी मेरे मन का चोभ जा सकता है, अन्यथा नहीं । परन्तु वह जुवा खेलने में मुक्त से निपुण है, उसको परास्त करने योग्य यह विद्या मैं कहां पाऊँगा । सुना है, अयोध्या के महाराजा ऋतुपर्श इस समय ज़ुवा खेलने में संसार भर में श्रद्वितीय हैं। किन्तु वे क्या सुक्ते श्रपनी विद्या सिखा सकेंगे ? जी नहीं मानता । मुभ्ने चत्रिय जान कर उन्हें यह छाशङ्का होगी, "यदि किसी दिन मैं उनसे जुवा खेलने का धनुरोध करूँगा, तो वे मुक्तकी न हरा सकेंगे।" धाखिर उन्होंने निश्चय किया, ''छन्रावेश से राजा ऋतुपर्ण के पास जाऊँगा। 🕆 मैं उनकी सेवा करके या अपना कोई विशेष गुख दिखा कर जैसे होगा उन्हें प्रसन्न करके उनसे बूतविद्या सीख्ँगा । इससे पुष्कर को जुने में हरा कर फिर राज्यलाम करना मेरे लिए कठिन न होगा। यह विचार नल की वड़ा ही उपयोगी जान पड़ा। किन्तु तुरन्त ही छन्होंने फिर यह वात सीची, ''इस अवस्था में, इस आधे वस की पहन कर, दमयन्ती को साथ ले कैसे ऋतुपर्श के पास जाऊँ ?" जनका हृदय निराशा से अधीर हो उठा । फिर उन्होंने सोचा, ''इसका भी एक उपाय है। यदि दमयन्त्री कुछ समय के लिए बाप के घर जाकर रहे, ते। मैं अयोध्या जाकर चृतविचा सीख सकता हूँ। किन्तु दमयन्ती क्या मुभ्ते छोड़ कर अकेली बाप के घर जाना पसन्द करेगी ? कभी नहीं । तो फिर उपाय क्या ?" नल में ग्रब सोचने की शक्ति न रही। वे चिन्ता से परास्त होकर सो गये।

इस तरह दिन पर दिन बीतने लगा। एक दिन नल ने दमयन्तों से कहा— "प्रिये ! तुम कुछ दिन के लिए विदर्भ नाकर रहो । मैं कुछ यल करके देलूँगा, कदाचित् इस विपत्ति से छुट-कारा पा सक्टँ।"

दमयन्ती—"नाथ ! प्राय रहते मैं आपको छोड़ कर नहीं जा सकती । मैं पिता के घर जाकर मुख से रहूँगी और 'आप वन वन मारे फिरेंगे, यह कभी मुम्मे सख हो सकता है ?"

"जिय विनु देह नदी विनु वारी।" तैसहि नाथ पुरुष विनु नारी॥"

चित्रप, आप भी विदर्भ चित्रप, भेरे पिता आमकी इष्टदेवं की मौति आवरसत्कार से रक्खेंगे।

नल—"में जानता हूँ कि तुस्हारे आता-पिता मेरा ध्रनादर व रें द करेंगे। किन्दु मैं कीन मुँह लेकर उनके पास जाऊँगा १ तुन्हारे स्वयंवर में मैं चतुरिक्कणी सेना सजा कर विदर्भ गया था, ध्रव इस भेष से कैसे वहां जाऊँगा। दरिद्रावस्था में कुटुम्ब के घर जाने से मर जाना ध्रम्बा है।"

दमयन्ती जुप हो रही। नल ने समभा, "इसयन्ती प्रपने मन से उन्हें न छोड़गी। उनके मन में यह मी पूरा विश्वास हो गया कि कुछ दिन दमयन्त्री से अलग होकर न रहने से उद्धार होना कठिन है। इसलिए वियोग-ज्या कुछ दिन के लिए इस दोनों को सहनी होगी, परन्तु पविपाला दमयन्त्री को वे अकेली उस जङ्गल में कैसे छोड़ कर कहीं वार्येंगे ? कौन हिंस ग्रादि जङ्गली हुए पहांची से उसकी रचा करेगा ?" फिर उनके सन में यह वात ष्याई िक धर्म ही सती की रचा करता है। कितनी ही नई उम्र की ब्रह्मचारियी अकेली तीर्थाटन करती हैं, निर्जन वन में कुटी बना कर तपस्या करती हैं, कौन उनकी रचा करता है ? मन में कोई टह संकर्स उत्पन्न होने सं उसके पिरोगेषक युक्ति का अभाव नहीं होता। श्राक्षिर नल ने निश्चय किया कि जब दूसरा उपाय नहीं है तब दमयन्ती को गाड़ निद्रा में सोती छोड़ कर किसी ओर खल दूँगा। दमयन्ती जैसी युद्धिसती और सुशीला है, उससे वह किसी न किसी तरह निर्विष्ठपूर्वक पिता के घर पहुँच जायगी। जब सुदिन आवेगा तब उसके साथ फिर मेट हो रहेगी। यदि इस विपत्ति का अन्त न होगा तो मेरे भाग्य में जो दुःख बदा होगा वह सुभे अवश्य भोगना पड़ेगा। दमयन्ती पिता के घर रह कर बैटे बेटी के साथ किसी तरह समय वितावेगीही।"

यह सीच कर नल ने इसयन्त्री से कहा—"प्रियं ! इस जङ्गक के उत्तर तरफ से होकर जो राखा पूरव ओर गया है, वह विदर्भ जाने का मार्ग है, उस मार्ग से लोग चाहें तो खांख मूँ द कर विदर्भ जा सकते हैं। विनया, महाजन और वीर्थयात्री लोग बराबर इसी रास्ते से वहाँ जाते खाते हैं। यदि किसी दिन तुम्हारी इच्छा हो तो तुम उन यात्रियों के साथ इस रास्ते से धनायास ही पिता के घर जा सकती हो।"

नल के इस प्रकार कहने का अवल क्या है, यह दमयन्ती की समस्त्र में आ गया। उसने कहा—"नाथ! आपकी वात से मेरा हृदय काँपता है। क्या आप सुसको लोढ़ना चाहते हैं? दासी ने ग्रापका क्या अपराध किया है ! किस दीप से आप इस

दासी को छोड़ेंगे।"

सल कुछ न बोले। पर दमयन्ती मारे चिन्ता के ज्याकुल ही

वर्ठा। बद्यपि वह स्वामी के साथ एक ही कपडा पहरे थी। तथापि

उसका मन नहीं मानता था। रात में वह नल को दोनों माहों से ध्रुच्छी तरह जकड कर सोती थी। कुछ दिन यों ही गीते।

एक दिस दसयन्ती श्रधिक परिश्रान्त होने के कारण नल से पहले ही सी गई। नल ने उसे गाड़ निद्रा में निमन्न देख धीरे धीरे

डठ बैठे श्रीर उसके श्राधे कपड़े फाड़ कर जाने की उचत पुर । किन्दु दमयन्ती सी सती जी की कीन ऐसा पति होगा जी विना

किन्तु दमयन्ती सी सती जी को कौन ऐसा पति होगा जो बिना स्प्रांसू बहाये डोड़ सकेगा १ नज पेड़ के नीचे सोई हुई दमयन्ती

के पास खड़े होकर ऋनिमेप नयन से उसे देखने लगे। पर्वों के बीच से चन्द्रमा की चटकीली चाँदनी दमयन्ती के खुँद पर

पितत हो रही थी। वनकास के दुःख से उसकी कान्ति मिलन हो गई थी तो भी नल को उसके मुँह की अपूर्व शोभा देख पड़ी। दस-पन्ती फूँस पत्ते विद्या कर सोई थी, परन्तु नल को यही जान पड़ता

था जैसे वह चम्पा के फूलों पर सोई हो। वे जितना ही ध्यान-पूर्वक उसे देखते थे उतना ही उसका मनोहर रूप उन्हें प्रपती स्रोत स्थिता था। वे उसकी शोभा वार वार देख कर भी उस न

होते थे। उन्होंने चाहा कि एक बार इसयन्ती की छाती से लगा कर श्राविधी विदा लूँ किन्तु ऐसा करने से वह जाग चठेगी, पछता कर रह गये. पा चसे छाती से त लगा सक्ते। मीडे क्या

कर आाल्पा विदा लूं किन्तु एसा करने से वह जाग वठगा, पछता कर रह गये, पर उसे छाती से न लगा सके। पीछे चुप-चाप आँस् बहाते हुए वहां से विदा हुए। चलते समय जान पड़ा जैसे किसी ने उनके पैर में वेड़ी डाख दी हो। कुछ दूर जाकर ने फिर लीट अपने और दमयन्ती की उसी अवस्था में देस कर फिर खाना हुए। कुछ दूर जाकर उन्होंने सोचा, "इस वार

उससे क्रालिरी भुलाकात कर आता हूँ।" फिर ब्राकर उसे देखा, वह उसी तरह गम्भीर निद्रा में अचेत हो पढ़ी थी। पर उसकी क्रांकों से क्रांसू वह रहे थे। चन्द्रमा की किरखों में वह फ्रांसूकी रेखा सोने की सकीर सी देख पढ़ती थी। नस अब वहाँ खड़े नहीं

रह सके। उन्होंने दमयन्ती के पास घुटने टेक कर धरती पर वैठ हाथ जोड़ ईश्वर से प्रार्थना की "भगवन ! आप अन्तर्यामी हैं। आप सब जानते हैं। मैं अपने सुख के लिए दमयन्ती को नहीं

छोड़ता हूँ। यदि ग्रापकी कृपासे दमयन्तीको फिर निपध के

सिंहासन पर वैठा सकूँगा तभी लीटूँगा, नहीं तो यही मेरी दस-यन्ती से आख़िरी विदाई है। तुम साधु के पालक ग्रीर सती छियों के सहायक हो। दमयन्ती की रचा का भार तुम्हारे ऊपर सींपे जाता हैं।" नल यह कह कर खड़े हुए श्रीर दमयन्ती की श्रीर न

देख कर बड़े बेग से निकल चले। कुछ रात रहते ही दमयन्ती की नींद दूदी। उसने देखा, नल पास नहीं हैं। उसकी साड़ी फटी है। वह चैंक उठी।

उसने सोचा, इतने दिन जिसका डर था वह ग्राज सत्य हुन्छा। पति के ऐसे निष्ठुर व्यवहार से पविज्ञता दमयन्ती के सन में ज़रा मी कोध उत्पन्न न हुन्या। वह केवल यही सोच कर बार बार

ज़रामा काथ उर्राक्ष न हुआ। वह कवल यहा साच कर बार बार पछताने लगी कि दोष मेरा ही है। मैं वेस्तवर होकर क्यों से। गई ? अगर मैं सोती नहीं तो वे सुक्ते छोड़ कर कमी नहीं जा

सकते ?" कई वार उसके मन में होता, शायद नल कीतुक के मिल कहीं छिपे हैं; अभी आचेंगे। किन्तु विलम्ब देख कर उसने विचार किया, नल श्रव भी बहुत दूर न गये होंगे। श्रभी उनकी खेाज करने से वे मिल सकते हैं। यह विचार कर दमयन्ती नल को खोजने चली। किन्तु उस विख्त वन में वे किथर गये, इसका कैसे पता लग सकता था। जब नल कहीं दिखाई नहीं दिये तब दमयन्त्री न्याकुछ हो उन्मादिनी की माँति इधर उधर दौहने स्तगी। कभी पहाड़ की चोटी पर चढ़ कर चारें श्रोर देखती श्रीर चिल्ला कर प्रकारती, "नाथ ! आप सुम्मे छोड़ कर कहाँ चले गये ? एक बार दर्शन दीजिए।" कभी बालू पर पैर का चिह्न देख कर ''नल इसी छोर गये हैं," सीच कर जहाँ तक पैर का चिह्न दिखाई देता था, जाकर फिर लैंग्ट आती थीं। कमी पतिविरह से हतझान हो पद्य, पन्ती, पेड़, पीधे श्रीर सता श्रादि जो सामने मिलता था, . जससे नल की बाव पूछती थी। इसी वरह वीन दिन भीत गये। इस बीच में उसने न कुछ खाया, न कुछ पिया, न वह एक बार सोई, बराबर इस अङ्गल से उस जङ्गल में घूमती रही। कब भीर हुमा और कब सांभ हुई, इसकी भी वह कुछ ख़बर न रखती थी। दिना प्रज पानी के उसका शरीर निर्वत हो गया। उसमें अव चलने फिरने का उतना सामर्थ्य न रहा। इसी श्रवस्था में वह एक दिन एक विशाल अजगर के मुँह के सामने जा पही । अजगर को देखते ही दमयन्ती के प्राया सुख गये। यद्यपि उसे दैं।ड़ने की शक्तिन थीतो भी वह जी छोड़ कर सागी, सर्पभी प्रपना विशाल शरीर लेकर बड़े वेग से उसके पीछे दीड़ा। दमयन्ती कहाँ

तक दें।ड़ सकती थी, थोड़ी ही देर में थक कर धरती पर प्रचेत हो गिर पड़ी। अब दमयन्ती के बचने का कोई उपाय न रहा। साँप उसके पास पहुँच गया श्रीर उसे निगलना ही चाहता था, इतने में अकस्मात् उसके मस्तक में एक ऐसा तीर आ लगा कि वह वहीं ढेर हो गया। इमयन्ती ने पीछे की श्रोर घूम कर देखा ती साँप की मरा पाया। साथ ही इसके एक व्याधा भी पेड की म्राडं से हाथ में धतुपनाग लिये उस भ्रोर भाता दिखाई दिया । दम-यन्ती यह समक्त कर कि इसी ने मेरे प्राण वचाये छतज्ञता प्रकाश करने के लिए खड़ी हुई। ज्याधा ने दमयन्ती का परिचय पूछा। दमयन्ती कहने लगी--"मैं निपत्ति की मारी खामी के साथ इस जङ्गल में आई थी। मेरे खामी न मालूम मुक्ते छोड़ कर कहाँ चले गये। मैं चन्हें खेाजते खेाजते यहाँ ग्राई धीर इस अजगर के मुँह में पढ़ चुकी थी। श्रापने दया करके मेरे प्रास बचाये, भगवान श्राप का भला करें।"

दमयन्ती एक आफ़त से वच कर दूसरी आफ़त में फॅसी। दुरात्मा व्याधा दमयन्ती की देख कर उसके रूप से मोहित हो गया। कुछ देर दोनों में बातें हुईं। पीछे व्याधा ने कहा— "सुन्दरी! तुम मेरे घर चली। मेरी घरनी होकर रहोगी तो तुम्हें कोई कष्ट न होगा।"

दमयन्ती ने उसका मवत्तन समक्त कर कहा—''धुनो निषाद ! तुम मेरे प्राणदाता हो। तुन्हें मैं पिवा के तुत्य समकती हूँ। भय-त्राता जन्मदाता से कम पून्य नहीं होता। मैं तुन्हारी ऋतज्ञा हूँ। ऐसी बात न बोलो, जिससे तुम पर मेरी अश्रद्धा उत्पन्न हो । तुम जाग्रो । ईश्वर तुम्हारा मङ्गल करेंगे ।"

तव ज्याथ ने कभी समुर वाक्य से सान्स्वना देकर, कभी भय दिखा कर उसे राज़ी करने की चेटा की। दमयन्त्री ने उसकी इस पापानिलापा पर पृथा दिखलाई और उसे ख़्ल धिकारा। इससे कुछ होकर उसने वल-प्रयोग करना जाहा। दोनों वाहें फैला कर वह दमयन्त्रो की ओर दैखा। यह देख कर दमयन्त्री डर कर वहां से दिशुत-वेग से भाग चली। ज्यावा भी उसके पीछे पीछे दैखा। वह वह संकट में पड़ी। जब वर्मरेचा का कोई उपाय न देखा वब वह हाय जोड़ छायीर सार में बोली—''नारायख, वासुदेव! मैं ध्रवला हूँ, यह नरपिशाच ज़करदस्त्री मेरा वर्म विगाड़ना चाहता है। आप मेरी रचा करें।''

विधाता का चरित्र कीन जान सकता है ? पहले ही से ' आकाश वादल से विश्व था। एकाएक विजली के प्रकाश से सारी वनमूमि चनक उठी और साथ ही उसके अयङ्कर शब्द से दसीं दिशायें प्रतिष्वनित हुईं। ससीप ही एक .कॅचे ऐड़ पर कज़पात हुआ। दमयन्ती और न्याध दोनों ही अब से अचेत हो। धरती पर गिर पड़े। कुछ देर बाद दमयन्ती ने आंस खोल कर देखा, ज्याधा निष्णाण होकर वस्ती पर पड़ा है। दसयन्ती ईश्वर को धन्यवाद दे वहाँ से चल दी।

नल ने दमयन्ती को विदर्भ जाने का जो रास्ता वतला दिया था, घूमते फिरते वह उसी रास्ते पर आई। देखा, कितनें ही न्यापारी अपना सीदा धोड़े, हाथी और बैलों पर लादे हुए उस

रास्ते से जा रहे हैं। दमयन्ती उन लोगों के पीछे पीछे जाने लगी। जब सांभा को उन लोगों ने एक सरोवर के किनारे ठहरने को डेरा **डाला तय दमयन्तो भी वहीं रह गई। आधी रात को कितने** ही जङ्गली हाथी उस सरीवर में पानी पीने की श्राये । उन्होंने गर्वेई हाथी को देख कर कुद्ध हो उन पर ब्राकंमण किया। व्यापारी नि:शङ्क-चित्त से सरोवर के तट पर सीये थे। उस समय वड़ी विषम दुर्घटना घटी। आक्रमग्रकारी जङ्गली हाथी धीर मागने वाले प्रान्य द्वाथियों के द्वारा कितने ही लोग रैंदि गये। उनमें बहुतेरे मर गये। इमयन्ती जगी थी, इस कारण उपद्रव ध्रारम्भ होते ही वहाँ से भाग कर उसने किसी तरह अपने प्राण बचाये परन्तु उसके सर्वाङ्ग कांटों से चत-विचत हो गये । मूर्ख ज्यापारियों ने सोचा। "आज तक कभी ऐसी अनिष्ट घटना न घटी थी. भ्रवश्य ही इस अभागिन स्त्री के भाने से यह उपद्रव हुआ है।" इत लोगों ने दमयन्त्री को जान से मार डालने का विचार किया भीर कह दिया कि अब तुम हम लोगों के साथ जाओगी ते तुम्हारी जान न बचेगी। जाने का इरादा छोड़ दो, या जान से हाथ थे। बैठो । यह सुन कर दमयन्ती ने उन लोगों का साथ छोड़: दिया। वह श्रकेली घूमती फिरती चेदि देश में जा पहुँची। उसका फटा पुराना कपड़ा, खुला हुआ रूखा केश, बदन में धूल श्रीर कीचड़ लगी देख कर शहर के लड़कों ने समम्का, शायद यह स्त्री पगली है। फिर क्या था ? वे सब के सब कुंड बाँघ कर तालियाँ बजाते ग्रीर उसके ऊपर घूल उड़ाते हुए उसके पीछे पीछे चले । द्वमयन्ती उन बालकों से प्रपना पिण्ड छंडाने के लिए किसी अच्छे.

व्यक्ति का सहारा हूँ इने लगी। बव वह उस अवसा में राजभवन के पास आई तब रानी ने उसे देखा। दशवन्त्री की उस अवसा में अनाधिनी की भांति विल्लखती देख कर उन्हें दया लगी। उन्होंने हासी से कह कर उसे भीवर बुखा लिया और करुणा भरे सर में कहा—"तुम कीन हो ? इस दुरवस्था में यी तुम्हारा सारूप देखने से जान पढ़ता है, तुम किसी अच्छे घर की बहू बेटी हो। तुम इस सरह प्रस्केती क्यों घुम रही हो?"

रानी की पवित्र मूर्ति देवने और उनकी सीठी वात सुनने से दमयन्त्री को बड़ा सन्तेष हुआ । वह उन्हें प्रवास करके बोली— "मैं अपना हाल क्या कहूँ ? एक समय मैं अयस्त सुख में प्राप्त थी। मेरा घर घन जन से भरा था। किन्तु मेरे खामी जुवे में सर्वेख हार कर मुक्ते साथ ले वन में आये थे। एक दिन वे मुक्तको छोड़ कर कहीं चले गये, वच से मैं दरावर उनकी खोज में धूमती किरती हूँ। कहीं उनका पता नहीं लगता।"

यह कहते कहते उसकी आँखों में आंध् मर आये। रानी भी अपने आंध्र की न रोक सकीं। उन्होंने कहा—''बेटी! हुम रोक्री मत। धीरत धरेर। मेरे यहाँ रहेर । मैं तुम्हारे खासी की खोज में आदमी भेजूँगी। तुम जितने दिन मेरे यहाँ रहोगी, तुम्हें कोई क्लोरा न होगा।"

रानी की वात सुन कर दमयन्त्री ने कहा—''आपका कोमल समाव देश कर आपके पास रहने को भेरा जी चाहता है। किन्तु मेरे कई एक नियम हैं। जिनकी रचा आपको करनी होती। मैं किसी का जूँठा न खाऊँगी, न किसी का पैर पक्षाहूँगी। पर-पुरुष के साथ बात न करूँगी। यदि कोई पुरुष मेरी क्रीर कुदृष्टि से देखें तो आप उसे उचित दण्ड दीजिएगा।" रानी—"ऐसा ही होगा" कह कर उन्होंने अपनी बेटी को

चुला कर कहा—''सुनन्दा ! मैं ने इसे अपने यहां रक्ता है । यह तुम्हारी वरावर उम्र की है । आज से तुम इसे सखी की तरह श्रीर अपनी सगी वहन की तरह समक्त कर इसके साथ अच्छा वर्तीव

करना।"

सुनन्दा साता की ब्याझा से दसवन्दी को ब्रपने घर हो गई और
प्रश्रीचित स्नेह और ब्रच्छे ज्यंबहार से उसकी खातिर की। दस-

यन्ती चेदि राज्य की श्रधीश्वरी के आश्रय में रह कर सुख से समय विताने लगी। इधर नल दमयन्ती को छोड़ कर बड़ी तेज़ी से निकल चले;

किन्सु दमयन्ती की चिन्ता उन्हें पग पग में पराभूत करते लगी। वे कुछ दूर आगे जाते थे श्रीर पीछे की ओर घूम कर देखते थे। उनके मन में होता या जैसे दमयन्ती रीती हुई उनके साथ था रही है। कभी उन्हें यह जान पढ़ता था कि दमयन्ती जैसे .खून ज़ोर से पुकार कर उनसे कह रही है—''नाथ! मुक्ते छोड़ कर आप अनेले कहाँ जा रहे हैं, खड़े हो, मैं भी आपके साथ जाऊँगी।'' वे पीछे घूम कर देखते थे, कोई कहीं नहीं। कमी उनके मन में होता था, जैसे कोई खो चित्रख चित्रख कर रा रही है। जब अच्छी तरह ध्यान देकर सुनते थे, तब उन्हें मालूस होता था कि हवा बाँस के रन्ध्र में प्रवेश

करके जो शब्द एत्पन्न कर रही है, उसी को उन्होंने दमयन्ती का रोना समभ लिया था। इसी तरह धागे बढ़ते बढ़ते एक दिन नल १७२

ने देखा—"सामने जड़ूल के मीतर आग धषक रही है।" नज़दीक से जा कर देखा, एक गढ़ूढे के चारों ओर आग लगी है। उसके मीतर एक बहुत बड़ा साँप आग की लपट से सुत्तस रहा है। मारे कप्ट के वह खूब ज़ोर से सांस ले रहा है और जीम लपलपा रहा है। यह देख कर नल ने समभा, कुछ ही देर में साँप आग में जल

कर ख़ाक हो जायगा । मलुष्य हो, या कोई और ही प्रायी हो, नल फिसी को सङ्कर में पढ़ा देख यथासाध्य उसकी रचा का उपाय करते थे, इसलिए उन्होंने सांप को फिसी वरह वया लैने की वात सोची ! किन्सु खभावदुष्ट सांप की रचा करने के लिए जाकर उन पर क्या वीतेगी यह भी उन्होंने जाना । आख़िर अपने ऊपर

विपद झाने की आशङ्का रहते भी उन्होंने सर्प की रचा करना दी उचित समभा। वे अद आग के भीतर प्रवेश करके दोनों हाथों से सांप की उठा कर बाहर ले आये। परन्तु इससे हुआ क्या ? उनका

श्रङ्ग श्राग में सुलस गया और देा चार हग आते न श्राते सांप ने

भी वन्हें काट खाया। तो भी वे उसको न छोड़ कर निरापद स्थान में ले घाये। इस समय नल ने धाकाशवाणी सुनी---''तुम इस उप-कार का फल ध्यवस्य पाग्रोगो।'' नल अब वहाँ रहने की कोई , ध्यावस्यकता न समम्म जङ्गल से वाहर हो अयोध्या की ग्रोर रवाना

हुए। नल ने देखा, साँप के काटने से कुछ विशेष अनिष्ट न हुआ। केवल उसके निप से उनके शरीर की त्वचा विवर्ष हो गई और मुख की कान्ति की पहले श्री न रही। उन्होंने सोचा, छदावेश के लिए विधाता ने जो ऐसा कुछप कर दिया है सो अच्छा ही हुआ।"

उन्होंने अयोध्या पहुँच कर राजा असुपर्धा से भेंट की श्रीर

सारिध के काम पर नियुक्त करने की प्रार्थना की । अनुपूर्ण बहुत दिनों से एक योग्य सारिध की खोज में थे । जल को बातचीत से प्रसन्न होकर उसने उसे अपने अस्तवल का जमादार बनाया। नल की नई शिका से अनुपूर्ण के थोड़े थीड़े ही दिनों में ,खूब सुशि-चित हो गये। यह देख कर श्रृतुपूर्ण नल पर बहुत प्रसन्न हुआ।"

विदर्भ के महाराज सीमदेव ने जब वेटी और जामाता के देश-स्थाग की बात सुनी तव उन्होंने शोकार्त होकर दोनों की खोज में जहाँ तहाँ ध्रमेक द्त भेजे । उनमें सुदेव नामक एक दूत ने चेदि-राजधानी में उपस्थित होकर एक दिन दैवयोग से दमयन्ती को देखा। दमयन्ती ने भी उन्हें पहचान ित्या और दासी के द्वारा उन्हें भीतर युका भेजा। रानी की सब बात मालूम हुई। दमयन्ती का परिचय पाकर उन्होंने जाना, 'वह उनकी सगी वहन की घेटी है।'' तव ते। उन्होंने बड़े स्नेह से दमयन्ती को भूषण-वसन से विभूपित कर अपने आदमी के साथ उसे सम्मानपूर्वक पिता के घर भेज दिया। उसके माता-पिता खोई हुई कन्या को पाकर बार बार अपने भाग्य को सराहने लगे।

दसयन्ती पिता के घर जाकर बढ़े आराम से रहने लगी, पर उसका जी वरावर उदास रहता था । नल के लिए उसकी आंखों में दिन रात आंसू मरे ही रहते थे । चिन्ता से उसका शरीर दिनों दिन सिज और कान्तिहीन होने लगा। महारानी ने कन्या की अवस्था महाराज से कह कर नल के खोजने के लिए फिर देश देश दूत भिजनाथे। दमयन्ती ने दूतों को जुला कर कहा—"आप लोग नगर, गाँन, तीर्थ और तपीवन जहां जायें, सब जगह लोगों से

कहना—"पत्नां का प्रतिपालन करना पति का परम धर्म है। धन्य वे पुरुष हैं जो पतिन्नता को के विरुद्ध झान्यरण करते हैं। एक सब्जन अपनी अनुरागिणी पत्नी को जङ्गल के भीतर सोई हुई छोड़ उसकी साड़ी से झाथा फाड़ कर कहाँ भाग गये इसका पता नहीं।" यदि इस पर कोई कुछ बोले और उस क्यक्ति का पता बताने तो आप लोग मेरे पास उसकी ख़नर हैं और उनका पूरा परिचय भी पूछते आने।" यह कह कर दमयन्ती ने जाइम्लों को प्रवास करके विदा किया।

बहुत दिनों के धनन्वर पर्वाद नाम के एक शक्षय ने जैरिट कर दमयन्त्री से कहा—''राजकुमारी! मैं तुम्हारे पित की खोज में बहुत जगह धूमा पर वे न मिलें। मैं जहाँ जहाँ गया, सर्वन्न प्रम्हारे धार्यगालुसार बात कहीं पर किसी ने कुळ उत्तर न दिया। धारित्र मैंने धार्यभ्या के महाराज च्युपर्य की सभा में जाकर धापको कही बात सब की सुनाई। इस पर राजा या राजसम्बन्धी कोई हुळ न बेला। केवल राजा के एक सारधि ने वह बात सुन कर सुन्ने एकान्त में ले जाकर वरावर तुम्हारा धौर तुम्हारी सन्त्रानी का छुशल पृक्षा। उसकी बातचीर से जान पड़ा जैसे वह सुम्हारे दुःख से अलम्ब दुली हो। क्या उसने निपय में तुम्हारे यहाँ सारिष्ठ का काम किया था। ?''

दमयन्ती—''उसका नाम कहिए तो मालूम हो ।'' पर्योद—''नाम उसका बाहुक है ।''

दमयन्ती—"इस नाम का कोई आदमी मेरे यहां सारिष षा, समरण में नहीं आता। अच्छा, उसका शील स्वभाव ग्रीर

स्वरूप कैसा है १"

पर्णाद—"वह देखने में अलम्च कुरूप है! उसका शरीर फाला है, किन्तु उसके शील खमाव के सम्बन्ध में जो कुछ मालूम हुआ है, उससे वह अच्छे कुछ का जान पड़ता है। वह सलनिष्ठ, जितेन्द्रिय श्रीर दयान है। छोटे काम पर नियुक्त होने पर भी वह अपने गुख से मन्त्री की भाँवि अतुपर्ख के यहाँ आदरखीय श्रीर विश्वासपात्र समभा जाता है। राजा के श्रीर जितने सारिध श्रीर धोड़ों के सईस वगैरह हैं, सभी उसमें निश्चल भक्ति रखते हैं। यह पूर्ण विद्वान है, लोगों के मुँह से सुना कि स्थ चलाने में उसकी: बरावरी करने वाला संसार में विरक्ता ही कोई होगा।"

इमयन्ती--''क्या उनकी दिनचर्या के विषय में भी कुछ सुना ?'' पर्याद--''डसे तुम्हारी वात पृछते सुन कर मैंने उसके धाचार व्यवतार के विषय में भी वहुत वादों की खोज की। वह निस्प स्नान करके प्रप्रिहेश्न करता है; वडी पवित्रता से रहता है। प्रपने नियत कार्य से छुट्टी पाने पर एकान्त में बैठ कर शास्त्र की चिन्ता श्रीर परमेश्वर के ध्यान में समय विवादा है। पर आश्चर्य की बाव यह है कि वह विशेष धर्मात्मा और सब का त्रियपात्र होने पर भी सदा उदास श्रीर चिन्तित रहता है। सुना है कि रात का स्रधिक भाग वह रोकर ही विवाता है। उसकी एक और विचित्र देव यह है कि वह अपना एक पुराना, मैला कपड़ा जहाँ जाता है, साध लिये जाता है। कभी कभी तो उस पुराने कपड़े की छाती पर रख कर ग्रांसू बहाता है। पर ऐसा वह क्यों करता है यह कोई नहीं जानता । उसके सम्बन्ध में मैं जो कुछ देख सुन श्राया हूँ वह श्राप से कह सुनाया । अब ग्रापका को कर्चन्य हो कीजिए ।

दमयन्ती ने योग्य पुरस्कार से पर्णाद की प्रसन्न करके विदा किया । पर्णाद की बात से उसे पूरा विश्वास हो गया कि वह बाहुक हो नल हैं। परन्तु दो वातों से उसके मन में कुछ सन्देह उत्पन्न हुमा। प्रथम यह कि पर्शांद ने कहा—''वह देखने में वड़ा क़ुरूप है। वे तो कुरूप नहीं हैं, तो क्या फिसी रोग ने उनकी सुन्दरता हर ली ? दूसरे नल शस्त्र थीर शास्त्र दोनों ही में श्रद्वितीय पण्डित हैं। यदि संकट में पड़ कर उन्हें दूसरे की नैकिरी करनी पड़ी तो इन्होंने मन्त्री या सेनापति का कार्य न करके सारिध का काम क्यों किया ? जो कुछ हो, जब नल के साथ बाहुक का इतना साटरय है तव एक बार उसे भ्रवत्य देखना चाहिए।" यह सोच विचार कर दमयन्ती माता के पास गई धीर पर्हाद की कही हुई सब बाते' सुना कर मांसे कहा—''मां! में राजा ऋतुपर्या ग्रीर बाहुक को यहाँ मॅंगाने के लिए एक उपाय रच्ँगी। द्याप अपनी पितासे कुछ न कहें । सुदेव की एक वार मेरे पास बुला दीजिए । वह ग्रसन्त बुद्धि-मान् फ्रीर कार्यसाधन में जुशल है। उसके द्वारा सेरे विचार के अतु-सार कार्य होगा"।

रानी की आज़ा से सुदेव अन्तःपुर में आया। दमयन्ती ने इससे कहा—"आप एक वार अयोध्या के महाराज ऋतुपर्ण के पास जाइए, उनसे कहिएमा कि ढेर दिन हुए नल दमयन्ती को छोड़ कर कहां गये इसका कुछ पता नहीं। इस लिए दमयन्ती ने दूसरा पित करने का विचार किया है। स्वयंवर का दिन क्रीव आ गया। यदि आपकी इच्छा हो तो आप आज ही विदर्भ को चल दीजिए। मैं किस अमिशाय से आपके पास आया हूँ यह अगपको पीछे मालूम होगा, अभी यह बात आप किसी से न कहिए।"

"जो आज्ञा" यह कह कर सुदेव विदा हुआ। कुछ दिन में राजा ऋतुपर्श के पास पहुँच कर उसने दमयन्ती का संवाद उनसे कहा। ऋतुपर्ध दमयन्ती के रूप-गुष्ध की बात सुन कर पहले ही से इस पर ऐसे श्रासक्त ये कि उसका दूसरा स्वयंवर होना सन्मव है या नहीं, इंस पर कुछ विचार न किया। वे सुदेव की विदा करके विदर्भ जाने की तैयारी करने लगे। दमयन्ती ने अयोध्या से विदर्भ जाने का मार्ग दूर और दुर्गम जान कर कल्पित खयंवर का दिन इतना समीप नियत कर दिया या कि विशेष सुशिचित पोड़े श्रीर परम प्रवीग सारिथ के विना कोई राखा वय करके ठीक समय पर खयंत्रर में उपस्थित न हो सकता था। ऋतुपर्ध ने बाहुफ को जुला कर कहा-'देखे बाहुक ! विदर्भ के राजा भीमदेव की बेटी दमयन्ती का दूसरा खबंबर होने वाला है । मैं आज ही विदर्भ की यात्रा कहँगा। तुमने पहले कहा या कि थे।ड़ा हाँकने में तुम बड़े प्रवीख हो, रख चलाने में शायद ही कोई तुम्हारा सुकावला कर सके ।" श्राज तुम श्रपनी प्रवीधता दिखाओ । यदि तुम ठीक समय पर सुमे विदर्भ पहुँचा सकोगे ते प्रम जी माँगेरगे वह मैं त्रवश्य दूँगा ।³³

दमयन्ती का दूसरा क्ष्यंवर होगा, यह संवाद नल के हृदय में बाख की तरह लगा। उसका सिर घूमने लगा। वह अपने मनोगत भाव की छिपा कर बोला—"महाराज की आज्ञा पालन के लिए में पूरी चेष्टा करूँगा। आप तैयार हों।" १७≂ पतित्रता।

क्या कभी दूसरे पति को वर सकती है ? उसका दूसरा खर्यवर होता क्या कभी सम्भव है ? हो भी सकता है, मेरे सहश प्रक्रीद्रोही नराध्य को दण्ड देने के खिए विधाता असम्भव को मी सम्मव कर सकते हैं ! दमयन्त्री का खर्यवर विता अपनी आंखी देखे मेरे पाप का प्रायक्षित्त न होगा ! इसलिए, विधाता अस्मको हुत है थे गरे पाप का प्रायक्षित्त न होगा ! इसलिए, विधाता अस्मको हुत रूप में वहां लिये जा रहे हैं । अपिर उसने सोचा,

"यह कभी नहीं हो सकता । चन्द्रमा स्रपनी शीतलता छोड़ सकता है, पर इसयन्ती कभी अपना धर्म नहीं त्याग सकती।

यह कह कर नल घोड़ा गाड़ी जीत कर खाने गया। परन्तु ऋतुपर्य की बात सुन कर उसका हृदय भीतर ही भीतर शोक से जल रहा था। उसने सीचा—"दमयन्त्री सी पवित्रता स्त्री

मैं दमयन्ता के अपर अविश्वास करके अपने अपर पाप का वीक्त न हुँगा।" अनुपर्ध रख पर आरुढ़ हो विदर्भ को रवाना हुए। नहा असाधारण प्रवीणता दिखलाता हुआ दुर्गम पहाड़ी सूमि, कीचड़ से भरा हुआ मार्ग और दुर्भेय बहुल की अविक्रम कर नियद दिन

से भरा हुमा मार्ग क्षार हुमेंच बहुल को भविक्रम कर नियह दिन की प्रातःकाल ही वहाँ पहुँच गया। भ्रद्यपूर्ण उसके पोड़ा हांकने की निपुणता, कार्यतत्परता और अससहिष्णुता देख कर वहे विस्मित और . खुरा हुए। विदर्भ राजधानी के पास झा जाने पर उन्होंने पाहुक से कहा—"मैं तुम्हारे ही गुष्क से खबंबर होने के पूर्व यहाँ पहुँच गया। इससे जान पहजा है मेरी कामना सिद्ध होगो। यदि वह सर्वाङ्गसुन्दरी दमयन्वी आज सुभे खबंबर में स्वीकार करेगी तो

हुमको दस गाँव, एक हजार अशरफी और एक बहुमूल्य पगड़ी

इनाम दूँगा।" ऋतुपर्ध न जानते थे कि वे बाहुक के पास इनाम का प्रलोभन क्या दे रहे थे मानो निष जगल रहे थे। बाहुक ने कुछ उत्तर न दिया।

थोड़ी ही देर में अधुपर्ध का सुखस्त्रम मङ्ग हुआ। उन्होंने राजधानी में प्रवेश करके देखा, खर्यवर की कहीं कुछ चर्चा भी नहीं है। तब उन्होंने जाना, किसी ने मुठी ख़बर देकर उन्हें ठग दिया। वे अपने आने के उद्देश्य को छिपा कर राजा भीमदेश से मिले। भीम ने उनके इस प्रकार अनवसर आने का कारण पूछा। वे मारे ख़जा के यथार्थ कारण न बता सके। "बहुत दिन से भेट नहीं हुई थी, इस खिए आपसे भेट करने आया हूँ।" यही उत्तर उन्होंने दिया।

इधर दमयन्ती छड़े उत्पुक्तिचन से राजा अनुपर्य और उनके सारिध बाहुक के आने की प्रतीचा कर रही थी। इस बात पर उसे पूरा विश्वास था कि नल के सहश असाधारण सारिध के सिवा दूसरा कोई उतने धोड़े समय में अयोध्या से विदर्भ नहीं आ सकता। इस समय वह वार वार की सुनी रण की वर्षे रहर सुन कर समम गई कि इस रण के चलाने वाले अवश्य ही नल होंगे। उसने कोठे की छत पर से बाहुक को देखा, किन्तु दूर के कारण और नल की सुरत-राकल बदल जाने के कारण वह कुछ निश्चय न कर सकी। तव उसने बाहुक को जांच के लिए अपनी एक विश्वासपात्री दासी को उसके पास भेजा। बाहुक का उत्तर सुन कर दासी का सन्देह और मी टढ़ हुआ। उसने दमयन्त्री के पास आकर बाहुक की अनेक अलीकिक शिक की बात कही। बाहुक विवा आग के लकड़ी जला

सकता है। वह अपनी दृष्टि के द्वारा ख़ाली घड़े को पानी से भर सकता है और भी ऐसी अनेक वार्त उसने कहीं। किन्तु दमयन्वी ने अलीकिक गुणों की अपेचा लैकिक गुणों से ही बाहुक की परीचा लेना चाहा। उसने बाहुक के हाथ की वनाई तरकारी खाई और उसमें वहीं स्थाद पाया जो नल की बनाई तरकारी में पानी थी।

इसके याद उसने अपने बेटे और बेटी को दासी के साथ वाहक के पास भेजा। बहुत दिनों के अनन्तर बेटे बेटी को देख कर बाहुक रूपी नल अपने को न सँभाल सका। वह उन्हें गेहि में विठा कर बारंबार उनका ग्रुँह चूमने और झाड़प्यार करने लगा। उसकी प्रांक्षों में धाँसू भर आये, सारा शरीर कण्टकित हो गया। पीछे

पतिञ्चा ।

१८०

हासी मन का भाव लख न ले, इस सब से उसने लड़के लड़की को गोव से उतार कर कहा—"मेरे भी ऐसे ही दो वालक हैं। इन्हें देख कर उनका समस्या हो आवा। इसीसे में अपने को न रोक सका। हुम इसके लिए मन में और कुछ वात न समको।" हासी ने तीट कर दमयन्ती से सब वाते कहीं। इमयन्ती के मन में अब बुछ सेदेह न रहा, तो भी उसने वाहुक को एक वार अपनी आँख से देखना उचित समभ उसे अन्तापुर में बुला मेनने के लिए मावा से प्रार्थना की। रानी ने राजा मीम से सलाह से वाहुक को भोवर बुलाया। चिर वियोग

के अनन्तर नल और दसबन्ती की परस्पर मेट हुई। दोनों के रहु-रूप में बहुत कुछ हैर फोर हो गया था । नल ने देखा, खपंवर की सभा में जिस दसयन्ती ने विकसित कसलिनी की माँति अपनी शोभा और सुगन्य से ह्लारी व्यक्तियों के मन को अपनी श्रोर

खोंच लिया था, ग्राज वह सायङ्कालिक पश्चिनी की भाँति कुम्हि-लाई हुई सौरभद्दीन देख पड़ती है। वह गेरुआ कपड़ा पहने योगिन सी बनी है। सिर में कभी वेल और कंघीन देने से केश जटिल श्रीर भूरे हो गये हैं। गाल पीले पड़ गये हैं। हेांठ सुखे हैं। शरीर में एक भी अलकार नहीं है। उसी पुराने आधे कगड़े से कमर से जपर के प्रङ्ग को छिपाये हैं। वहीं साढ़ी का श्राधा दुकड़ा उसके जीवन का आधार हो रहा है। पवित्रता इमयन्ती की वह विषाद-भरी मूर्ति देख कर नल का हृदय विदीर्थ हुआ । दमयन्ती ने भी देखा, नल का वह गास्मीर्य सुन्दर विलिष्ट शरीर राहुमल चन्द्रमा की भाँति प्रकाश-हीन श्रीर अखन्त कुश दिखाई दे रहा है। उनके चेहरे पर कालापन छा गया है । सेवावृत्ति के श्रवलम्बन से उनके शरीर की धवस्था कुछ धीर ही सी हो गई है। नल की दशा देख कर दमयन्ती का हृदय काँप चठा । नल के खरूप में इतना धन्तर पढ़ गया या कि जिन्होंने नहां की पहले देखा था वे उसे न पहचान सके । किन्तु परित्रता छी के पास क्या परि कभी छिपे रह सकते हैं ? इसथन्ती ने बाहुक में नल के सम्पूर्ण लच्चा देख उनके पैरी पर गिर पड़ी। फिर जो कुछ हुआ, वह कहना बाहुल्यमात्र है। गर्म भ्रांसू के साथ गर्म श्रांसू का, दीर्घ निश्वास के साथ दीर्घ निश्वास. का, और उमगती हुई छाती के साथ उमगती छाती का मिलन हुआ। दोनों के चिर-सन्तप्त-हृदय ठण्डे हुए। नल जिस रात की इसयन्ती की साड़ी में से आघा काड़ कर निकल भागे, उस समय से ब्राज तक दोनों ने किस कष्ट से समय विताया, दोनों पर क्या क्या आपदायें आईं, वह परस्पर कहते ही कहते

सारी रात बीत गई। दोनों में किसी की एक बार भी श्राँखः न लगी।

भार द्वारो ही यह शुभ संवाद चारों ओर फैल गया। विदर्भ के प्रजागय रानी और राजा को वेटी-जमाई के शोक में निमम देख कर किसी तरह का उत्सव न मनाते थे। सब उदास रहा करते थं। अब वे लोग यह शुभ संवाद पा बढ़े उत्साह से श्रानन्दोत्सव: की तैयारी करने लगे।

राजा ऋतुपर्य को जब मालूम हुआ कि उनका सारिय वाहुक

ही नल हैं तब वे दमयन्ती के प्रति लालसा दिखलाने के कारण लाजा से प्रियमाण हुए । प्राल्पि उन्होंने नल की प्रार्थना के प्राटुस्तर उन्हों यूविवया सिखला दी, और उनसे रख हाँकने की रिप्ता पाकर प्रसन्न मन से अयोध्या को लीट गये। नल जुवे में जब से सर्वस्त हार कर पुष्कर के द्वारा अपमानित हुए से तबसे उनका हृदय दिन रात शांक से जला करता था । वे जुछ दिन उपरान्त स्मयन्ती की विदर्भ में ही रख ससुर से आक्षा ले निषय को गये और पुष्कर की किए जुला भेजा। साथ ही इसके यह मी कहला मेजा कि जुवा खेलने के लिए जुला भेजा। साथ ही इसके यह मी कहला मेजा कि जुवा खेलना मंजूर न ही तो लढ़ने के लिए तैयार हो।

पुष्कर पहले ही से दमयन्त्री को चाहता था। पर यह मनीगतभाव प्रकाश करने का उसे पहले कभी साहस न दोता था!
इस समय धनमद में मत्त होकर उसने वड़ी षृष्टता के साथ कहा-"श्राज मेरा चिरमनेारथ सफल हुआ। तुंम्हारी समस्त धनसम्पत्तिः
मेरे हाथ में था जाने से अब दसयन्ती आप ही यहाँ द्याकर मेरी

सेवा करेगी। इस लिए श्रव विलम्ब करने की ज़करत क्या ? शीघ्र ही जुवा ब्रारम्भ हो। मैं खेलने को वैयार हूँ ।"

दोनों फिर जुना खेलने लगे। पुष्कर ने सोचा था, "पहले की तरह इस बार भी नल को सहज ही में जीत लॉॅंगा ∤" 'पर यह न हमा। पुष्कर प्रति बार हारने लगा। नल ने कमशः उसका राज्य धन श्रीर प्रायः तक ज़ुरः में जीव 'लिये। तव उन्होंने पुष्कर'से कहा—''दुष्ट ! नराधम ! तुम मान्नतुल्य भौजाई पर युरी इच्छा रखते थे। इस लिए प्राणवध ही तुम्हारा उचित दण्ड है। किन्त विधिवश इस समय तुम्हारी वह अवस्था हो। गई कि दमयन्ती के पाने की ज़ालसा तो दूर की घात है, मैं चाहूँ तो अब तुमसे उसकी सेवा कराऊँ । परन्तु तुम मेरे छोटे माई हो, कठिन अपराध करने पर भी तुम्हारा सुँह देख कर सेरे सन में दया उपज ब्राती है। आरस्नेह बड़ा प्रवल होता है, इस लिए मैंने तुसको छोड़ दिया। तुम्हें प्राग्रदण्ड देकर मैं श्रपने ऊपर आरुवध का कलङ खेना नहीं चाहता। तुम्हारी धन-सम्पत्ति भी मैंने तुमको लौटा दी। फिर कभी ऐसा खोटा काम न करना। जाओ, मैं भ्रसीस देता हूँ, तुम धर्मपथ पर झारुढ़ होकर दीर्घजीवी हो; ग्रीर सुख से समय बिताओ ।"

पुष्कर माई के प्रति कृतक्षता प्रकाश करके अपने घर गया। नल निदर्भ से दमयन्ती को अपनी राजधानी में ले आये। होनों पुत्रवत प्रजापालन और धम्मीनरण से सुखपूर्वक समय विताने लगे। सभी लोग दमयन्ती रानी और राजा नल की धर्मनिष्ठा पर धन्य धन्य करने लगे। दमयन्ती जैसी गुखवती ओ, नल भी वैसे ही गुणवान थे। सलरचा के लिए हमयन्त्रों के पास नल का देवदूत वनकर जाना और निकाप्ट भाव से दूत का कार्य्य करना,
जलते हुए सांप को आग के बीच से बाहर निकाल कर उसकी
रचा के लिए अपने प्राय का मोह न करना, और पुष्कर के सहश
हुट माई का अपराध कमा कर देना उनकी महातुभावता के जलन्त
प्रमाय हैं। जब तक यह वसुन्धरा रहेगी वब तक उनका पितृत्र
नाम प्रातःस्मरणीय रहेगा। वे जो "पुण्यलोक" की असाधारण
उपाधि से मूचित हुए, यह सर्वेशा उनके योग्य ही हुआ। दमयन्त्री
के साथ नल को मिलाप मिलकाश्वत के मेल के बरावर उपयुक्त
हुआ, हसमें सन्देह नहीं। "म्राणिकाश्वतसंयोग: कस्य न नयनीत्सवं
वजते।"

क्रठा ग्राख्यान

शकुन्तला

※※※※※※※※※※※ कार मगवान के बदय से हिमालय पहाड़ के नीचे आयामा अपनिक्ष की बनमूमि सुनहले रङ्ग में वोरी हुई सी जान पड़ती थी। प्रातःकाल के खिले फूल चारीं छोर ※※※※※※※ सुगन्य फैला रहे थे। पिरागण कलरक से छपने

मन की उमझ प्रकट कर रहे थे। ऐसे समय में हिसानापुर के महा-राज दुष्यन्त अपने अनुचर वर्ग के साथ शिकार खेलने के लिए वहाँ श्राये। जङ्गन्न स्वभाव से ही निस्तव्य श्रीर गम्भीर होता है, इस समय प्राखेट के कोलाहल से उसकी निस्तव्यता भङ्ग हो गई। बड़े बड़े विशाल पेड़ लवाओं से लिपटे हुए खड़े थे । उनके डाल-पात इतने घने थे कि उसके भीतर से सूर्य्य की किरण नीचे नहीं ग्राने पाती थी। इस कारण दिन में भी वहां अन्धकार का ही साम्राज्य रहता था। जङ्गल का कोई स्थान कटीले पैथों से घरा था, कहीं कांस ही कांस देख पड़ता था, कहीं पत्थर के बढ़े बड़े दुकड़े पड़े थे। कहीं समतल मूमि, कहीं ऊँची नीची, कहीं छोटे छोटे सोतें। में सूखे हुए पत्तों के सड़ने से जल विगड़ गया था। वे उसी विकृत जल की लिये धीरे घीरे वह रहे थे । कहीं भारने का पानी शब्द करता हुआ नीचे गिर रहा था। राजा दुष्यन्त के अनुचरवर्ग छोटे छोटे दल बाँघ कर इस जङ्गल को चारों ओर से घेरे खड़े थे, कहीं

स्स्ती लकड़ी का ढेर आग लगने से घषक रहा था। कहीं हफ, बांसुरी, ढोल स्रीर मृदङ्ग भादि भांति भांति को वाजे वज रहे थे। वन से बाहर होने का मार्ग वांत को बनाये हुए जाल से घिरा था। हथियारबन्द सिपाही, सर्वकंभाव से वहाँ खड़े थे। जङ्गल के प्रत्येक स्थान का परिचय रखनेवाले बनरखे मिळ किरात जङ्गल में शिकार

पतिसता ।

१८६

वजा कर परस्पर एक दूसरे को सङ्केत द्वारा कुछ कहते थे। कसी किसी कैंचे पेड़ पर चढ़ कर अपने साथियों को पुकार कर कहते थे—"यह देखों, जक्नुकी मैसीं का भुंड वस तरफ जा रहा है, यह हिरनें का यूथ सामने दिखाई दे रहा है, वह एकदन्वा हाथी इस ग्रीर श्रा रहा है, यह देखों, सामने की भाड़ी से एक सेस्टा वाब

निकला है।" मार, तीवर धीर तीवे आदि पत्ती दर कर एक पेड़ से दूसरे पेड़ पर उड़ कर बैठते थे। उनके भयसूचक शर्व्स से जङ्गळ की शान्ति में ज्याघात पहुँच रहा था। राजा दुख्यन्त ने वन में

खोजने की इच्छा से इथर उघर दीड़ रहे थे। उनके बाँगे हाय में सिंगा और दाहने हाथ में वर्छी थी। कमर में छुरी जटक रही थी। साथ में बड़े बड़े शिकारी कुत्ते थे। वे जङ्ग्ली अनुष्य कभी सिंगा

प्रवेश करने थेग्य दो पहिये की छोटी सी गाड़ी पर झास्ट्र होकर इस घने जड़क्त के मीतर प्रवेश किया। सारिश्य के सिवा उनके साथ में श्रीर कोई न था। हिरन के पीछे पड़ कर वे श्रीर साथियों को पीछे छोड़ आये थे। एक बहुत सुन्दर हिरन उनके सामने वायु-वेग से मागा जा रहा था। राजा का रथ भी उसके पीछे पीछे जा रहा था। जड़कं समावतः पेड़ पीषों से भरा रहता है, श्रीर रासा

भी प्रच्छा नहीं, इस कारण सारिष बहुत श्रायास करने पर

भी रथ को वहाँ तक नहीं ले जा सकता था जहां से राजा को हिरन पर वाण चलाने का सुभीता होता। हिरन के पीछे रथ कई कीस धागे निकल गया, घेखे के ग्रुँह से काग वह चला। राजा के सिर से भी पसीने चूने लगे, ते भी रथ हिरन के पास तक न जा सका। ध्याखिर रथ अङ्गल की पार कर भैदान में ध्राया। जङ्गल का हरय पीछे पढ़ा, सामने दूसरा ही हरय थ्या पढ़ा। किन्तु राजा ध्रीर सारिध की हिए थी हिरन के उपर। ध्रीर वस्तु देखने का उन्हें भ्रवसर न था।

े सारिय ने कहा— "महाराज ! मैं इतनी देर ऊँची नीची ज़मीन में इच्छानुसार रख नहीं चखा सकता बा। अब मैदान में अगया, देखना है, सुग भाग कर कहाँ जाता है ?"

राजा—''देखो, मैं इस हिरन को अभी मारता हूँ।'' साथ ही उन्होंने धनुष पर बाख चढ़ाया। किन्तु बाख फॅकने के पूर्व ही दें। तपसी एक पेड़ की आड़ से बाहर ही चिछा कर बोले— ''महाराज! यह आश्रम का मृग है। इसे मत मारो।'' यह मुन कर सारिथ ने राजा से कहा—''महाराज, दें। तपस्ती इस हिरन के मारने का निषेध कर रहे हैं।''

राजा--''ता शीघ्र घेरहे की बाग राको ।"

सारिश्च ने घोड़े को रोका। इसी समय शिष्यसहित एक सुनि राजा के सामने ब्याकर होनों हाथ ऊपर उठाकर बोले—

महाराज ! यह आश्रम का स्मा है, इसे न मारे । दीन दुक्षियों के रचार्च ही आपका अस्त्र है न कि निरपराधी के वधार्य । राजा ने उन्हें प्रखाम करके कहा—''अब मैं इसे न भारूँगा।" यह कह कर बाख की प्रलच्चा पर से उतार कर तर्कस में रख लिया। वपस्ती ने आशीर्वाह देकर कहा—"महाराज! आप जिस

पतिव्रवा ।

.644

तपस्वी---''महाराज ! इम होम की लकड़ी लाने जाते हैं। यहाँ से समीप ही कण्य ऋषि का आश्रम है, देखिए, वह दिखाई देता है। यदि आपके दूसरे कार्य में बाधा न पढ़े तो आप वहाँ

चलकर आज इस लोगों के श्रतिश्व हों। तपोवन देखने से आप जान सकेंगे कि आपके प्रताप से केवल आभवासी ही नहीं तपोवन के निवासी लोग भी निविधनतापुर्वक अपने धर्म का पालन कर रहे हैं।"

राजा—''क्या सहर्षि (कण्व) इस समय आश्रम में हैं १" तपसी—''कहाँ। वे अपनी कन्या शकुन्तला के ऊपर श्रतिथ-

राजा---- अच्छा। भ जनका आजन व जाकर राज्यस्ता का दर्शन करूँगा। मैं उनके आजम के समीप आकर विना उनके ग्राजम का दर्शन किये कैसे जासकता हूँ ? यह सेरी विनय

प्रार्थना है कि जब वे तीर्थ से आर्वे, तब उनसे कह दीजिएगा।" दोनों तपस्वी राजा को आशीर्वाद देकर चले गये। राजा ने सारिथ को रख धारो बढ़ाने की आज़ा दी। रख च्यों च्यों जाने लगा तों त्थें पहाड़ी भूमि की कुछ और ही शोसा दिखाई देने लगी। चारों ओर समतल सूमि, जिसमें कहीं कांटे और कडूड़ का नाम नहीं, कहीं कहीं जन्नती पेड़ों के साथ साथ फल-फल के पेड़ दिखाई देते थे। कुछ दूर और आगे जाकर राजा ने देखा, "कहीं कटे हुए नये धान का बेग्फ रक्खा है, कहीं गाय कछड़े चर रहे हैं। कहीं पेड़ के नीचे सुगों के गिराये पक्षे फल पड़े हैं।

ऋषिगाग्र स्नान करके जिस रास्ते से गये हैं, वह उनके बल्कल श्रीर जटा से गिरं हुए पानी से भीगा हुआ है। सुगगर रा के शब्द से डर कर इधर उधर भागते हैं और बार बार पीछे की ग्रेगर घूम कर आँखें फाइ रश की ओर देखते हैं। होम का पवित्र धुवाँ चारों द्यार सुगन्ध फैला रहा है। दूर से मधुर सामगान सुन पड़ता है। किसी के न कहने पर भी राजा और सारिथ दोने! समस्त गये कि उन्होंने तपावन में प्रवेश किया। देखा, मालिनी नदी कल-कल ग्रज्द से कानी में मधु बरसाती हुई वह रही है। उसके दोने। किनारें। पर मुनिगरों की दर्शनिर्भित कुटियाँ शोभायमान हैं। नदी को तट में जो स्वासाविक सुन्दर उपवन है, वसन्त ऋतु के झागमः से उसकी अपूर्व शोमा चित्त को मोहित कर रही है। वसन्त की: हवा मालिनी के जल-स्पर्श से ठण्डी होकर बेले की सुगन्धि से सनी हुई धीरे धीरे वह रही है। उसके जगने से राजा का शरीर ठंडा हुआ। उनकी श्रकावट दूर हुई। उन्होंने सारिथ से कहा---''हम होग उपोवन में आ गये। इस मेष से मुनि के आश्रम में. जाना उचित नहीं । तुम मेरे अस्त्र शक्ष ले लो । घोड़े हिरन के पीछे बहुत दूर निकल आने से हैरान हो गये हैं। इन्हें कुछ देर सुखाने दो। में वंपोवन के दर्शन से अपने को पवित्र कर आता हूँ।" यह कह कर राजा ने घतुप-वास और शिकारी लिवास सारिष

के हाथ में दे भ्राप श्रकेंत्रे तपोवन में प्रविष्ट हुए । साथ ही स्तको दिख्या भुजा फड़क व्ही।वे सीचने त्वगे—''शान्तिमय

तपेवन में विवाइस्चक अङ्गस्करका का कारख क्या ? फिर डनके मन में यह वान आई कि भनिवन्य का द्वार सर्वत्र खुला रहता है।" वे मालिनी से किनारे किनारे काने लगे। कुछ दूर जाने के बाद उन्हें रसखी का मधुर कण्ठखर सुन पढ़ा। जैसे कोई कह रही हो, "सखी! इधर, इधर।" राजा ने कुत्हलाकान्त दोकर उस ख्रार देखा—"धराबर वरावर उमर की तीन म्युपिकन्यायें घड़े को वगृल में लिये कुछ के पेड़ों को पानी से साँच रही हैं। वे केले का वकला पश्चे हैं। यारीर अळङ्कार-शृन्य है, श्रृङ्गार का कोई चिह्न उनके अश्च में दिखाई नहीं देवा। तो भी उनके अञ्चीनम रूप की ज्योति से सारा तपेषन विकसित हो रहा है। उनके प्रत्येक धड़ा दे सानी लाकप्य

जित हुई।"

राजा जो पेड़ की ओट से उन खिफल्याओं का दर्शन श्रीर उनके
परस्पर की वातचीत सुन रहे थे उसे वे खिफ्कन्यायों न जानती

टपक रहा है। देखकर राजा सुग्ध हुए। उन्होंने सन में सीखा, राजभयन में भी ऐसा मनोहर रूप देखना दुर्लभ है। उद्यान की नवलता सामाविक सीन्चर्स्य में ग्राज अवस्य ही वनलता से परा-

र्थों। इसिलए वे नि:सङ्कोचयात से पेड़ों को सींच रही थीं क्रीर परस्पर हास्य-विनोद की बातें कर रही थीं। वीनों ऋपिकसारियाँ श्रतुपम सुन्दरी श्रां। किन्तु जन तीनों में जो कम जग्न की थी वह जन दो सिखयों से भी सुन्दरता में बढ़ी श्री। नये यीवन के समाग्रत से उसकी खाभाविक शोमा तुरन्त के खिले हुए कमल की शोमा को भी लजा रही श्री। राजा मुग्यनेत्र से उसके श्रङ्ग की श्रतु-पम शोमा देखने लगे। वे उसका जो श्रङ्ग देखते थे वहीं उनकी हिए प्रदक्त रहती थी। ऋषिकुमारियों की बावचीत श्रीर परस्पर के सन्वोधन से राजा समम्भ गये कि उनमें जो कम उग्न की है वहीं कण्य की कन्या शकुन्तला है। दूसरी दो उसकी सखी हैं। उन दोनों में एक का नाम श्रमसूया श्रीर दूसरी का प्रियंवदा है।

ऋषिकुमारी जिस हँग से परस्य वाते कर रहा थाँ उससे राजा को विश्वास हुआ कि कठार ब्रह्मचर्य से जीवन विताना इन सवीं का उद्देश्य नहीं है। गृहस्य-घर की छड़िक्क्यों की माँति इन्होंने भी गृहस्यात्रम में प्रवेश करने योग्य झान लाम किया हैं। छस्मावत: जितेन्द्रिय और धर्मशीछ होने पर भी शकुन्तला को देख कर राजा के हृदय में टह अनुराग उत्पन्न हुआ। किन्तु चत्रिय होकर ऋषिकुमारी के प्रति प्रेमामिखाच विचत नहीं है इसिखर उन्होंने चित्त के वेग को रोकने की चेपा की। पर एकाएक उनके मन में यह भावना उत्पन्न हुई कि जब उस कुमारी को देख कर उनका विद्युद्ध हृदय उस ओर आकर्षित हुआ है वव वह अवश्य चित्रय से विवाहिता होने का अधिकार रखती होगी।

सव ऋषिकुमारी बड़ी निर्मयता के साथ रहस्य की वातें करती हुई पेड़ों में पानी सींच रही थीं। एकाएक उनके सन्मुख उपस्थित होते राजा की संकोच जान पढ़ा। वे किस तरह उनके पास प्रकट हीं, यह सुयोग हूँ हुने लगे। उसी समय एक भ्रमर, शक्तन्तला जिस नविकसित लवा को सींच रहीं घी, उस पर से उड़ कर शकु-त्रतला के सुँह पर बैठने की चेंध करने लगा। वह हर गई श्रीर श्रमेक द्याय करने पर भी वह उसे न मगा सकी। वह जिमर जाती थीं, भ्रमर भी उसी तरफ़ जाता वा धीर उसके होंठ के पास बारलार मँड्राता था। वह वहां से भाग कर, बैठ कर, खड़ी होकर, श्रीर भांचल में शुँह लिया कर, सब चपाय करके यक गई, पर भ्रमर उसका साथ व छोड़ता था। शकुन्तला ववरा गई; उसका सुँह सूख गया। अनस्या धीर प्रियंवदा खड़ी होकर चुपचाप यह प्रपूर्व कीतुक देखने लगीं। धाख़िर शकुन्तला श्रयोर होकर

साय नहीं छोड़ता । अय तुम इससे मुक्ते वचाओ ।"

ं अनस्या और प्रियंवदा ने हैंस कर कहा—"यह तुम इस से क्यों कहने लगों। इस रचा करने वाली कौन ? वपोवन-वासियों की रचा का भार स्वयं राजा के करर है। अगर तुम पर कोई सङ्कट आ पड़ा है तो राजा दुष्यन्त का स्मरण करो।" दुष्यन्त ने देखा, यही अच्छा अवसर है। वे तुरन्त पेड़ की आड़ से बाहर हो ऋिंप-छुमारियों के सामने उपस्थित हुए और वोले—"पुरवंशों के राजत्वकाल में किसका सामर्थ्य है कि सरलहृदया ऋषिकुमारियों पर किसी तरह का असावार करें ?"

वोत्ती—"सलो ! मैं सब यह करके बक गई, यह दुष्ट भैारा मेरा

ऋपिकुमारी चैंकि उठों । दुष्यन्त का प्रभावशाली सुन्दर स्रक्ष्य देखने ग्रीर उनके एकाएक प्रकट होने से उन सदों के ग्राक्षर्य की सीमा न रही । वे उस अपरिचित व्यक्ति को सामने देख कर इक्का बक्का सी हो रहीं। पीछे उनमें अपेचा-छत अनस्या बड़ी थी, वह आगे बढ़ कर बोली—"आर्य! कोई ऐसी अनिष्ट घटना नहीं घटी है। हमारी यह सखी एक अमर के द्वारा सर्वाई जा रही थी। वह इसके शुँह पर वैठना चाहता था और यह भागी किरती थी। हम दोनीं अलग खड़ी हो कर बड़ी हस्य देख रही थीं।"

इसके अनन्तर परस्पर जुशाल-प्रश्न के वाद सब के सब एक पत्थर की चट्टान पर बैठ गये। उन सर्वों की कथावार्ता से राजा को मालूम होगया कि शकुन्तला त्राह्मल की वेटी नहीं है, चत्रिय की वेटी है। राजर्पि विश्वामित्र उसके पिता हैं। मेनका नाम की श्रप्सरा उसकी माता है। महर्षि कण्व ने उसे पाला पोषा है। इसी से लोग जानते हैं कि वह कण्च की इी वेटी है। दुष्यन्त ने ऋषि-कन्याश्रों से श्रपना श्रसली परिचय न दिया। उन्होंने श्रपने की एक राजसम्बन्धी बताया। किन्तु उनके रङ्ग रूप श्रीर वीलचाल से शकुन्तला थ्रीर उनकी दोनों सखियाँ समक्त गई कि यही महाराज दुष्यन्त हैं। शक्कन्तका के अनुपम रूपलावण्य से राजा पहले ही मोहित हो चुके थे। उस समय बहु विवाह की प्रया थी। घनेक विवाह करने पर भी लोग समाज में दृषित नहीं समक्षे जाते थे। इस पर भी राजा के कोई पुत्र न था। इसिबर राकुन्तला को चित्रय की कन्या जान कर उसे पत्नी बनाने की उनकी प्रवत्न इच्छा हुई । शुक्रन्तेला भी राजा की कमनीय मृति देख कर क्षिर न रह सकी। वह जनपन से ही सुनवी थी कि योग्य वर मिल जाने से उसका व्याह कर देने में महर्षि को कोई श्रापत्ति न होगी।

वे यह नहीं चाहते ये कि शकुन्तता जन्म भर कुमारी ही उनके व्यात्रम में रहे। रूप, गुवा, कुल, शील चौर ऐश्वर्य में राजा दुष्यन्त से बढ़ कर योग्य वर कैंान मिलेगा ? इस लिए भेाली-भाली शकुन्तका ने राजा को देखते ही मन ही मन चन्हें अपना हृदय दे दिया । वार्ता से मनागतमाव प्रकट न करने पर भी वन दोनां के सन की धवस्था सम्बियों से छिपी व रही। प्रेम की भाषा न सुन पड़ने पर भी हृदय में उसकी प्रतिव्यनि पहुँच जाती है। इस लिए शकुल्तला श्रीर दुष्यन्त दोनें हो दोनें के हृदय का भाव समभ गये । राजा व्यवहार-कुशल और गम्भीर थे, इस लिए उनके व्यवहार से क्रञ्ज विवाचयाता प्रकट न हुई। किन्तु शकुन्तवा सरलस्वभावा थी, वह प्रपत्ने सानसिक आव को छिपाने में ग्रसमर्थ होकर सखियों की चपहास-पात्री बनी । राजा अनुसूचा और प्रियवंदा के साथ प्रेमालाप कर रहे थे, इसी समय तपावन में एक जन्नुसी द्वारों के धाने की वात सन कर सभी डर गई और इच्छा न रहते भी अपने धपने धाश्रम की चली गई ।

परस्पतवलोकन से दुष्यस्त और शकुस्वला के हृदय में की प्रेमािन प्रवतित हुई थी, वह विदेंत होकर दिन दिन वन दोनों की दग्य करने छानी। "राजा वरोवन में आये हैं," सुन कर ऋषियों ने यह के रक्षांध उन्हें कुछ दिन वहाँ रहने के हेतु अनुरोध किया। "वलों, शकुन्तला के दर्शन का तो सुविवा होगा।" यह सोच कर राजा ने उनके प्रसाव को सहर्ष खीकार किया। इससे दुष्यन्त और शकुन्तला दोनों को वीच वीच में प्रस्पर देखने का सुयोग मिलने और दोनों के चिच परस्पर दिन दिन प्रेम सूत्र में हढ़ रूप से

वद्ध होने लगे । शकुन्तला योग्य वर से व्याही जाय, यह श्रनुसूया श्रीर शक्तन्तला की एकान्त वासना थी। इस लिए उनकी राजा ग्रीर शकन्तलाकी मन का मान देख कर निश्चय हुआ कि इन दोनों का मिलन मिलकाञ्चन के संयोग सहश सब को नेत्र-सुखद होगा। महर्षि कण्व उस समय ग्राष्ट्रम में न थे। कब धावेंगे. इसका भी क्रछ निश्चय न था । इसलिए राजा ने उनके परेक्त में शक्रन्तला के साथ गान्धर्व-विवाह करने का संकल्प किया । गुरुजन की श्राज्ञा की अल अपेचा न रख प्राप्तवयस्क परस्पर श्रतरक्त कन्या-.बर के व्याह का नाम गान्धर्व-विवाह है। यह सर्वजनानुमोदित न होने पर भी उस समय के चित्रय-समाज में प्रचलित या । इसलिए राजा और शक्कनतला इन दोनों में किसी ने इस तरह के विवाह में कुछ संकोच न किया। शकुन्तला सब प्रकार अपने योग्य वर को म्रात्मसमर्पेश कर रही है, यह सीच कर अनुसूचा और प्रियंवदा ने इस विवाह में असलता प्रकट की । उन दोनों सखियों की सहायता से दुष्यन्त शक्कनतला के साथ गान्धर्व-विवाह करके छताथे हुए ।

कई दिन वर्गावन में रह कर दुष्यन्त घ्रपनी राजधानी को लीट गये। महिंपे कण्व को विना जताये, उनके परोच में शकुन्तला को त्रपोवन से ले जाना उचित नहीं, यह सोच कर या किसी धीर ही कारण से; दुष्यन्त शकुन्तला को त्रपोवन में रख गये। पर यह प्रतिज्ञा कर गये कि शीघ ही उसे अपनी राजधानी में ले जायें।

स्वासी के चले जाने पर पितप्राया शकुन्तला को पित के भिन्न ग्रीर कोई जिन्ता न रही। वह आश्रस के सब कर्तन्यों को भूल कर दिन रात केवल दुष्यन्त की चिन्ता ही से समय विताने लगी। कण्य मुनि उसके उत्पर श्राविश्विसत्कार का सार देकर गये थे। खासी की चिन्ता में निमग्न रहने के कारण शकुन्तजा ने इस कार्य में मूज की।

एक दिन हुर्नासा मुनि श्रविधिरूप में आश्रम में आकर उचस्वर से वेाले--''कोई है ? मैं अतिथि हूँ।" शकुन्तला दुष्यन्त की चिन्ता में ऐसी निमग्न थी कि उसने महार्षि दुर्यासा का पुकारना नहीं सुना । सुनिवर कोघ से उसे शाप देकर वेाले---''तू ने जिसकी चिन्ता में हुव कर मेरा अपमान किया है, जा, वह तुमें एकदम भूत जायगा ! जैसे पागत प्रादमी पूर्व का किया काम भूत जाता है, वैसे ही स्मरख करा देने पर भी वेरा प्रेमी तुम्ने न पहचानेगा।" शक्कन्तला इस प्रकार बाह्यझान-शून्य यो कि दुर्वासा का कठोर शाप भी उसके कान में न पड़ा ! किन्तु ग्रवसूचा ग्रीर प्रियंवदा यह शाप दूर से सुन कर देीड़ कर शाई' और उनके पैरों पर गिर कर शक्तु-न्तला का श्रपराथ चमा करने के लिए कोमलवासी से प्रार्थना करने लगीं। किन्सु क्रोधशील दुर्वासा किसी तरह चमा करने को राज़ी न तुए । परचात् उन दोनों ऋषिकुमारियों के अनेक अनुनय-विनय करने पर वोले-"कोई स्मारक चिह्न जब तक राजा न देखेगा तब वक शक्तन्तला का समरख उसे न होगा । स्मारक चिह्न देखते ही शकुन्तला की सव वार्त वसे समरण हो धावेंगी।" यह सुन कर दोनों सखियों को धैर्य हुआ।

राजा विदा होते समय शकुन्तजा को अपनी नासाङ्कित फॅगूठी दे गये थे। स्नस्थुण और प्रिणंबदा ने सोचा, यदि राजा नहीं पह-चानेंगे तो शकुन्तजा वहीं छँगूठी चन्हें देखने को देगी। उससे राजा को तुरन्त उसका स्मरण हो स्रावेगा । इसलिए स्रव घवराने की कोई वात नहीं। शकुन्तला एक तो पित के निरह से व्याकुल है, "उस पर यह कुत्तान्त सुनने से उसे मर्मान्तिक कष्ट होगा। यह सोच कर उन्होंने इस विषय में शकुन्तला से कुछ न कहा।"

कुछ समय के अनन्तर महर्षि कण्व ने तीर्थ से आकर दुष्यन्त के साय राकुन्तला के विवाह होने की वात सुनी । उनकी आहा की कुछ अपेचा न कर शकुन्तला ने जो सर्वथा योग्य वर को खोकार किया, इससे उन्हें कुछ खेद न होकर हर्ष ही हुआ। उन्होंने राजा के सहवास से शकुन्तला को गर्भवती देख कर उसे पित के घर भेज देना उचित समका। निश्चय हुआ कि महर्षि कण्व की वहन गौसमी और उनके शार्क्वय तथा शारद्वत नामक दो शिष्य उसे साथ ले जाकर हिस्तापुर राजा के पास पहुँचा आवेंगे। उन सवें के जाने का एक दिन नियत हुआ।

जो शक्रुन्तला इतने दिन तपोवन का प्रायस्करप हो रही थी, जिसने अपने कपलावण्य से इतने दिन तपोवन को विसूषित कर रक्ता था, वह अब सदा के लिए तपोवन से बिवा होती है। अहा ! यह दरय कैसा करुयोत्पादक है ! कैसा मर्ममेदी है ! सेपावन के जितने खावर जङ्गम जीव थे, सभी शक्रुन्तला के वियोगमय से कातर हुए । महर्षि स्थानतः धीर, गम्भीर और ज्ञानी थे, किन्तु शक्रुन्तला को जुदाई का स्मर्थ करके वे भी अधीर हो छे । खूब तढ़के स्नानादि किया समाप्त करके वे शक्रुन्तला को विदा कर देने के हेतु स्थव हुए । शक्रुन्तला जाती है, यह देख उनकी आखीं में आँसू मर आये । गला केंग्र गया । उन्होंने सीचा, में

इतना व्याकुल हो रहा है, तब न मालूम गृहस्थ व्यक्तियों का हदय कितना व्याकुल द्वाता द्वागा।" वहाँ जितनी ऋपिपनियाँ घाँ शकुन्तज्ञा को विदा करने के लिए सब उसके पास आई'। एक एक कर सब उसे छाती से लगाने धीर जाशीवाँद देने लगीं 🖟 किसी ने

कहा--''जाथ्रो, तुम खामी की सदा सुहागिन हो।" कोई बोली—"तुन्हारे बीर पुत्र उत्पन्न हो।" किसी ने कहा—"तुम पार्वती के समान पवित्रता हो।" इसी तरह सब श्राशीर्वाद देने लगीं । ग्रनसुवा धीर प्रियंबदा ने फुलपत्तों के ग्रासूपक से शकुन्तला को विभूपित किया । वह साचात् वनदेवी की भांति शोभा पाने लगी । इन दोनें। सखियों के मन का भाव बखाना नहीं जा सकता। वे देानें। छाया की तरह इतने दिन शकुन्तला के साथ फिरा करती या। राकुन्तला को सुखासे अपने को सुखी और उसके दुःख से अपने को दुखी मानती थाँ। वही शक्कन्तला ध्रय सदा के लिए **उनसे विछुरती है। यही सोच कर उन दोनों की देह से मानो** जान निकल गई। जब उसके जाने का सब सामान ठीक हो गया तय राक्तुन्तला ने महर्पि को प्रखाम किया । महर्पि ने गद्गद कण्ठ से कहा-''वेटी ! शम्मिष्ठा जैसी यथाति की प्रियतमा हुई, हुम

प्रत्र चलका करे। 199 सुन कर गैतिमी ने कहा--- ''शकुन्तला केवल इसे प्राशीर्वाद ही करके न समभ्ते, यह उसके लिए वरदान हुआ।"

भी वेसी ही पीत की प्रियतमा हो, ग्रीर पुरु को जैसा प्रतापी

महर्षि ने तपोवन के वृच और लवाओं को पुकार कर कहा-

"हे ब्राश्रम के तक्तुवागणा! जो शकुन्वला जिना तुम सर्वें को पानी दिये स्वयं पानी न पीती थी, स्वमावतः ब्रालङ्कार की ब्रात्यरा-गियी होकर भी जो पश्चात तुम्हें छेश न हो इस भय से कभी तुम्हारे नवपञ्चल न तोड़ सकती थी। तुम्हारे प्रथम फूल की कली निकलते देख जिसे पूर्ण ब्रानन्द होता था, वह शकुन्तला आज ब्रपने पित के घर जाती है। तुम सब इसे जाने की ब्राज्ञा हो।"

गौतमी ने राकुन्तला से कहा—''बेटी ! वनदेवतागय तुम्हारा क्वशल मना रहे हैं। तुम चन्हें प्रखास करो।''

शकुत्वला ने उन्हें प्रशास करके प्रियंवदा से कहा—''सखी ! सहाराज की देखने के लिए मेरा चिच ज्याकुल होने पर भी तपो-वन छोड़ कर जाने के लिए पैर नहीं उठता।"

प्रियंवदा—"सखी! वरोवन छोड़ कर जाने में केवल हुन्हीं को छेश होता हो, यह नहीं। एक बार तरोवन की छोर भी देखों, पिचगाय धाज चारा नहीं चुगते, सभी चुपचाप पेंड़ पर बैठे हैं। हरियों के मुँह से हरी घास गिरी जा रही है। वे मुँह ऊपर एठाये हुम्हारी छोर देख रहे हैं। मयूर ने नाचना छोड़ दिया है। खताओं के पुराने पत्ते क्या गिर रहे हैं सानो जनकी आंखी से आंसू टफ्क रहे हैं। हुम्हारी विरह-वेदना से आज सभी शोका-मुख हैं।"

शक्तुन्तजा एक लवा की ग्रोर देख कर बोली—"'पिता! मैं एक बार अपनी प्यारी बहन साधबीलता से मिल ग्राती हूँ।"

कण्य—''मिल आओ । वेटी ! तुम्हारा जो साधवीलता पर बहन का सा अनुराग है वह मैं जानता हूँ ।" शकुन्तला लता के समीप जाकर वेली—"माधनी! यद्यपि दुम रसाल के साथ अल से लिपट रही हो, वेा मी श्रपनी शाखा-रूपी वाँह से एक बार मेरा श्रालिङ्गून करो। मैं चिर दिन के लिए दुमसे श्रलग होती हूँ।"

कज्ब—''वेटी ! मैंने तुम्हें योग्य वर के हाथ देने की यात पहले ही से सोच रक्खी थी ! दैवयोग से मेरा वह अभिलाप पूरा हुआ । जैसे यह नई लिक्ता आपसे आप रसाल को पा गई है, मैसे ही तुम भी अपने योग्य पित को पाकर कुतार्थ हुई। तुम सेनों के विवाहसम्बन्ध से मैं अब निश्चिन्त हुआ। अनायास ही ईश्वर ने मेरा मनोरख पूरा किया।"

राक्चन्वला ने अनस्या श्रीर प्रियंवदा से कहा---"सखिये।! माधवी की दुन्हारे हाथ सींपे जाती हूँ।"

कण्य—''अनस्या ! प्रियंचदा ! रोग्रेग सत ! तुन्हीं जब रोग्रीगी तब राजन्तवा को कैंान समकावेगा ?''

एक इपासन्नप्रसाना हरियाँ। पास में खड़ी थी। उसकी लच्च करके शकुन्तला ने महर्षि से कहा—"पिता! जब इस गर्मियाँ। सुगी के बचा हो तब यह शुभ सेवाद मेरे पास कहला भेजिएगा।"

कण्य--"वेटी ! श्रवस्य ही कहला मेजूँगा ।"

इसी समय पीछे से किसी ने शकुन्तला का कपड़ा खींचा। वह बोली—''ध्यू" ! कीन मेरा कपड़ा खींचता है ?"

कण्व--"जिसे तुमने दूघ, चावल और कोमल एस खिला कर वड़ा किया, जिसके मुँह में कुश कोटे लगने से तुम अपने हाथ से उसे पेछिती और तेल लगाती घों, वही तुन्हारा पुत्र स्थानीय मृग-शावक तुन्हारे वस्न को मुँह से पकड़े खड़ा है।"

शकुन्तला ने भृगद्धीने को देख कर कहा—"तुन्हें माहहीन देख कर मैंने इतने दिन तुन्हारा पालन किया। अब पिताजी तुन्हारी रचा करेंगे।"

कण्य—''वेटी ! तुम्हारी आंखों में आंख् उमड़ आये । रोना वन्द कर सावधानी से चलो । नहीं तो इस ऊँची नीची भूमि में तुम्हारे पैर फिसल जायँगे ।"

सामान्यत: मनुष्य मनुष्य ही को प्यार करता है। किन्तु लवा को बहन और मृगशावक को पुत्र की वरह कीन प्यार करता है? हरियो व्याई या नहीं, व्याई ते। उसके कीन बबा हुआ, यह जानने के लिए कितने लोगों का जी लगा रहता है? अपने को प्रकृति के साथ इस प्रकार मेलमिलाप रखने की शक्ति कितने मनुष्यों में पाई जाती है? शक्तनतला में यह शक्ति थी। जान पढ़ता है, इसीसे वह बनवासिती होकर भी महाराज बुष्यन्त की हृदयेयरी हुई।

वात पर थात छिड़ जाने से शकुन्सला के जाने में विलम्ब हो रहा था। यह देखकर मुनि के शिष्य शाक्तंत्व ने कहा—''गुरुदेव ! श्रव वहुत दूर जाने की श्रावश्यकता नहीं। श्रापको जो कुछ कहना हो, कहकर इस सरोवर के तट से श्रपने श्रश्रम को लैट जायेँ।"

कण्व—"तुम दुष्यन्त से कहना—"शकुन्तला ने किसी की श्रपेत्ता न करके उनके हाश्र श्रपने को सौंप दिया। उन्होंने जैसे उचवंत्रा में जन्म लिया है, इसके साथ वैसा ही अच्छा व्यवहार करेंगे। इसके प्रति उदासीनता दिखलाने से हम यद्यपि संयतात्मा हैं ते। भी हमारा हृदय दुखी होगा, इसका वे सारह रक्तेंगे। शक्तु-न्तला के सम्बन्ध में उनसे हमारी यही प्रार्थना है। इसके याद जे। इसके भाग्य में लिखा होगा वह होगा 🗗 उसके सम्बन्ध में हमारा कुछ कहना नहीं है।

शाईरव से यह कह कर कण्य ने शकुन्तला से कहा—"वेटी ! तुम से भी कई एक वार्वे कहनी हैं। उन्हें समस्य रखना। तुम ससुराज जा रही हो। वहाँ जाकर गुरुजनीं की सेवा करना, सीत के साघ प्रियससी की तरह ज्ववद्वार करना। खामी 📆 प्रप्रिय न्यवहार भी करें तो भी उनके साथ क्ष्मी प्रतिकल भाषरय नहीं करना। प्राधित बनें। पर दया रखना। कभी सीभाग्य का गर्वन करना । जो क्षियों इस व्यवस्था के श्रमुसार चलती हैं वही यथार्थ में राष्ट्रियी-पद-बाच्य हैं। जा इसके विरुद्ध खाचरख करती हैं, वे वंश की रोग हैं। उनके द्वारा वंश की सर्वादा छप्त हो जाती है।"

यह फश्कर फिर वन्होंने कहा—''ब्रव में वहुत दूर न जाऊँगा। तम अपनी संखियों से मिलफर श्रव थहां से प्रस्थान करे। ।" शङ्क-न्तला रेति रेति पिता की प्रणास करके वेलि--''क्या धनस्या

न्नीर प्रियंबदा भी यहीं से लीट जायँगी **?**"

फण्न---"हाँ वेटी ! ये दोनों भी व्याहने चेएय हुईं । इसलिए दुम्हारे साथ इनका राजसमा में जाना वनित नहीं । गीतमी तुम्हारे साय जायगी।"

शकुन्तज्ञा—''धाजी ससी ! तुम दोतीं एक साथ मुक्ते गर्ले समाग्री।

चन देखें (अनस्या श्रीर प्रियंवदा) वे झाँसू वरसाती हुई

शकुन्तला को गले से लगाया और दूसरा कोई न सुने ऐसे धीमें स्वर में शकुन्तला से कहा—"सबी ! यदि किसी कारण से राजा तुमको न पहचान सकें तो तुम उन्हें उनकी नामाङ्कित ग्रॅंग्ट्री दिखलाना ।"

शकुन्तला—"सखी ! तुमने ऐसी वात क्यों कही ? सुनकर भय से मेरा हृदय कांपता है ।"

सिखयों ने कहा—''ढरने की कोई बात नहीं। स्नेह की गित विचित्र है। दूसरे राजा की चित्तवृत्ति ! कीन जाने किस घड़ी कैसी रहे। इसिलिए तुम से यह बात जता दी।"

शक्कुन्तला ने पिता से पूछा—''मैं इस वपीवन में फिर कव धाऊँगी ?"

कण्य---''वेटी ! योग्य पुत्र के हाथ में राज्य श्रीर कुडुम्यवर्ग का भार देकर जब तीसरेपन में खामी के साथ वानप्रस्थ श्राश्रम शह्य करोगी तब फिर इस श्राश्रम में आश्रोगी।"

यों ही बातचीत करते दिन पहर से ऊपर ब्रा गया। शक्नुन्तला एक एक कर फिर सब से मिली बीर ब्रांसू भरी ब्रांखों से गौतमी के पीछे पीछे हितानापुर की ब्रोर चली। कण्य मुनि भी ब्रमसूचा ब्रीर प्रियंवदा को साब ले उदास मन से ब्राधम को लीट ब्रायं। ब्रातीवाले को बाती देकर जैसे लोग निश्चन्त होते हैं वैसे ही शक्रुन्तला को पीत के बर भेज कर कण्य मुनि स्वस्य हुए।

शकुन्तला दुष्यन्त के दर्शन को चली है, किन्तु दुष्यन्त को क्या उसका स्मरण है ? वे तपोवन से बिदा होकर जब राजधानी को ग्राये थे तव शकुन्तला की चिन्ता उनके चित्त में छाई थी। परन्तु पहाड़ का शिखर गिरकर जैसे गिरिनिःस्व नदी की गित रोक देता है, दुर्वासा के शाम ने भी वैसे ही विशाल पापाय का आकार थारख कर राकुन्तला के सम्बन्ध में जो उनका अनुराग-स्रोत या, उसकी गित को रोक दिया। दुष्यन्त शकुन्तला के सम्बन्ध की सब बाते भूल गये। राकुन्तला के प्रति पूर्वानुराग की बात तो दूर रही, उन्हें शकुन्तला के देखने तक की सुधि न रही। इसी तरह कुछ दिन बीतने पर एक दिन वे राजकाज से छुट्टी पाकर भाराम कर रहे थे। ऐसे समय में उन्होंने किसी को यह गीत गाते सुना—

"क्यों गये तुम भूल मुभको सो ज़रा इम से कहो।
क्या यही है न्याय! जो मुभको साज़रा होकर रहे। !!
पाप-पङ्कुज की काली उस पर रहे तुम भूल कर।
है मुनासिय क्या यही! वैठे अले हो पूल कर॥
शी रसाल की मखरी जब रसभरी सीरमसनी।
तब न होते थे ज़ुदा करने लगे खब शठपनी॥
रानी इंसपदिका अपने सन से यह गीत गा रही थी। किन्तु
यह सुन कर राजा एकदम ज्यम हो उठे। उनके चित्त की गित
विचित्र हो गई। उन्हें जान पड़ा, जैसे उनकी कोई अन्ठी चीज़
सो गई, जो अमूल्य रक्ष उनके पास खा, वह अब नहीं है। वहुत
सीचन पर भी वे ज़ुछ न समक्त सके। किन्तु एक विपादपूर्णभाव
उनके मन में उरमह हुआ।

राजा मन हो मन इस विषाद का कारख हूँ इरहे थे। इसी समय द्वारपाल ने अपकर इत्तिला दी—"महाराज! हिमा- लय पहाड़ के निकटवर्ती काश्यपसुनि के श्राश्रम से कई एक सुनि मुनिपिन्नियों के साथ श्रीमान से मिलने को झाये हैं। काश्यप का नाम सुनते ही राजा ने वह ही उत्सुक हो उन्हें श्रीतर ले खाने की खान्ना दी श्रीर उनके खागत के लिए पुरो-हित की संवाद भेज खाना दी श्रीर उनके खागत के लिए पुरो-हित को संवाद भेज खाप अन्निहोत्नालय में गये। यह कहने की ज़रूरत नहीं कि काश्यप के आश्रम से खाये हुए ऋषि और स्प्रिप्निन्नी और कोई नहीं, वहीं महिंपे कण्य से शाब्य शाङ्गरव और शारद्वत थे। उनके साथ गीतमी और शक्तन्तला थी। श्रनेक कठिन मार्ग का प्रतिक्रम कर वे हित्तनापुर खाये थे। राकुन्तला अपनी चिरसिंचत तपस्या के फलस्क्त्य पित को देखने खाई थी। नहीं कह सकते, उसके मन में भावीसुख के कितने चित्र खिंदूत थे। किन्तु विधाता की इच्छा को कीन जान सकता है शक्तन्तला की जिस वात का अन्तुमान कभी खप्न में भी न हुआ था वहीं हुआ।

शाङ्गरेल क्षीर शारद्वत इसके पूर्व कभी शहर में न काये थे। इसिलए उन्होंने जो कुछ देखा, उससे उनके आध्वर्य की सीमा न रही। चारों श्रीर होगों की भीड़-भाड़ धीर कीलाहल । चारों श्रीर मीति भीति की विलाससामग्री! शान्तिमय तपेवन से इस मनुष्यकीलाहल-पूर्ण राजभवन में आकर उन्हें जान पड़ा जैसे वे धयकते हुए अग्न-कुण्ड में गिर एड़े हों। उनका जी घवरा उठा। राजा ने सिंहासन से उत्तर कर विनयपूर्वक उन सर्वों का आतिष्यसस्कार किया। उनकी निष्कपट मिंह देख कर वे सव बड़े सन्तुष्ट हुए। शकुन्तला सब के पिछे लजा से सिर नीचा किये खड़ी थी। घूँ घट के भीतर से उसकी ग्रानुष्य सुन्दरता ने राजा की दृष्ट को आकर्षित

पूर्व जिस भाव का उदय हुन्ना था, इस समय विवाहिता ग्रुकुन्तला को देख कर उन्हें लेशमात्र भी उस भाव का उदय न हुग्रा । ऋषि-गयों से इस तरह उनके पास आने का कारण क्या, वे केवल इसी

बात को सोचने लगे। उन्होंने उन सबों को आदर-पूर्वक विठा कर उनके आने का कार**ख** पूछा।" शार्द्धिय ने कहा---"महाराज ! महर्षि कण्व ने आपकी ष्राशीर्वीद देकर कहा है। आप जैसे गुग्रवान हैं, शक्कुन्तला सी

वैसी ही गुणवत्ती है। रसाल के साथ माथवी के मिलन की भाँति ध्राप दोनों का सम्मिलन भी ग्रिमनन्दनीय है। इसलिए पहले **उनसे अनु**मति न होने पर भी वे आप दोनी के गान्धर्व-विवाह से प्रसन्न हुए हैं। शक्कन्तला श्रापकी यथासमय सेवा कर गर्सियी हुई। धव आप इसको प्रहरू कर सुलपूर्वक इसके साथ धर्माचरण करें।" हुर्वासा के शाप से शक्तन्तज्ञा के सम्बन्ध की कोई बात राजा

को याद न यी। चन्होंने आश्चर्यान्वित होकर पूछा:---''क्या कहा ! मैंने इस ऋपिकन्या के साथ व्याह किया है १ग . जो कार्य समाज में श्रप्रचितत है, घर्मविरुद्ध न होने पर भी, उसके करने से लोग पग पग में भय खावे हैं। उन्हें सदा डर कर चलना पहता है। इस लिए गान्धर्वनिवाह की रीति से विवाहिता होने पर भी शकुन्तला शिङ्क्तुन-चित्त से राजा के पास ध्राई थी।

पहले ही से असकी छाती घड़क रही थी। इस समय राजांका उत्तर सुनकर माने। उसके सिर पर वक्र गिरा। वह इतने दिन से जी सुख-स्वप्न देख रही घी, वह यत्रार्थ में स्वप्न ही हुद्या । वह कुछ न नेल सकी। गैतिमी ने समभा, शायद राजा ने शकुन्तला का मुँह नहीं देखा, इसीसे उसे नहीं पहचान सके। उसने शकुन्तला से कहा—''वची! जजाओ सत। यहाँ आओ, मैं तुम्हारे मुँह पर से पूँषट हटा देती हूँ। इससे राजा तुम्हें पहचान सकेंगे।"

पह कह कर गीतमी ने शकुन्तला का घूँघट अपर की बठा दिया । मेघ का आवरण इटने से जैसे पूर्णचन्द्र की क्योतना से सारा संसार प्रकाशमान होता है, वैसे ही शक्कन्तला के पवित्र सुख की ज्योति से समागृह उज्ज्वल हुआ । सौन्दर्य देख कर किसका मन प्रसन्न नहीं होता ? किसका मन मुग्ध नहीं होता ? शक्कुन्तला के मुँह की अनुपम शोभा देख कर राजा ने मन में सोचा. ''संसार में इस मुँह की समता नहीं हो सकती। मानव जाति की वात जाने ॅं दो, चित्र में भी ऐसी सुन्दरता नहीं देखी जाती।" यह <u>भु</u>वनमी-हिनी सुन्दरता याचक रूप से उनके पास खड़ी है । महाराज दुष्यन्तं प्रतुत्तं प्रतापी, विश्वविदितं, चक्रवर्ती, नृपचक्रचूडामसिः थे । यदि वे इस स्ववः सन्प्राप्त शोमाराशि शक्कुन्वला को उपभोग के लिए रख लेते तो उन्हें कौन बुरा कहता ? किन्तु वे धर्मभीरु थे। झधर्म से उरते थे । उन्होंने कहा-"मैंने कभी इनको देखा है, यह भी समरण नहीं होता, ब्याह करना ते। दूर की बात है।" मर्माहत गैतिमी, शार्ङ्ग्य और शारद्वत ने राजा की अनेक

प्रभाविष गाया, राष्ट्रिय और राष्ट्रिय च राजा का अनक प्रकार से समकाने की चेटा की। उन सनें को सन्देह हुआ कि राजा ने शकुन्तला के रूप से मोहित होकर गुप्त रीति से उसके साथ गान्धर्व-विवाह किया था। अब लोकलजा से उसका ब्रह्मा करने में संकुचित होते हैं। इसलिए वे सन राजा की इस अकर्तव्यता पर हो एक कहु-वाक्य कहने में न चूके। राजा अपने को निर्दोषो जानरें थे, इसिलए ऋषिजयों के प्रति स्वामानिक सक्ति रहते भी उन्होंने उनकी बाव का जवाब देने में कुछ संकोच न किया। जब वे लोग राजा को किसी वरह नहीं समका सके वब शारहत ने खिसिया कर शकुन्वला से कहा—"इस लोगों को इनसे जो कुछ कहना था, कहा, अब तुन्हें कुछ कहना हो वो कहो।"

शक्कुन्तला क्या कहती। वह विचारी कोमलहृदया, सांसारिक विपय से प्रनमिश वालिका इतने दिन वन के वृत्त श्रीर त्रवाश्री तथा पशुपत्तियों को प्यार करके और उनसे प्रेम का बदछा पाकर शान्ति-पूर्वक सुख से समय विवाती थी । प्रेम को भीवर भी जो इतना भविश्वास भ्रीर सन्देह छिपा रहवा है, प्रेम करके भी जो पीछे इस प्रकार प्रममानित होना पड़ता है, यह शकुन्तला नहीं जानती थी। शक्तुन्तला क्या कहती 🧍 किन्तु स्वमायतः लब्बाशीला होने पर मी उसके लिए वह लब्बा करने का समय न था। स्त्री का सर्वस धन सतील है। राकुन्तला के उसी सतीलसम्बन्ध में सन्देह था पड़ा या । इसलिए प्रपनी मर्यादा के रक्षार्थ शकुन्तला की लज्जा लाग कर दी चार वार्व 'बोलनी द्वी पड़ीं । शकुन्तला ने पहले दुष्यन्त की ''ब्रावीपुत्र'' कह कर पुकारा, परन्तु तुरन्त ही उसके मन में हुस्मा, जय विवाह में ही सन्देह है तब यह सम्बोधन क्यों ? उसने कहा--''पीरन'' वपीवन में वैसा अनुराग दिसलाने, और धर्म की साची करके विवाह करने के बाद अब इस तरह नज़र बदलता क्या उचित है ?"

राजा--"बरसात की नहीं किनारे को तेवड़ कर प्राप मितन

होती है क्रीर तटस्य कुछ को भी गिराती है । देखता हूँ, वैसे ही तुम आप बदनाम होकर, अब मुफ्ते भी बदनाम करना चाहती हो।" हा ! कैसा कठोर ! कैसा हृदय-भेदी वाक्य है ! राकुन्तला का कलेजा फट गया। तो भी वह घीरज घर के वेलि—"महा-राज ! यदि आपको यथार्थ ही विवाह में सन्देह हो तो मैं आप को कोई स्मारक चिह्न विख्लाती हूँ, तब तो आपको विश्वास होगा ?"

राजा—"श्रच्छा, क्या स्मारक है दिखाओ ।"

शक्तुन्तला ने वही ज्वावली से आंचल को खोल कर देखा। ध्रमसूया और प्रियंवदा की वात अनने के पीछे उसने राजा की दी हुई अँगूठी को वहे यन से आंचल में बाँच रक्ता था। वह क्या हुई! वह वही घवराहट के साथ गौसमी का सुँह देखने लगी।

गौतमी ने कहा—''वेटी ! जावे समय मार्ग में तुमने शची-तीर्थ में स्नान किया था ! कदाचित् उसी समय वह पानी में गिर गई।''

गौतमी का सन्देह असम्भव नहीं है। यह शकुन्तला और इसके साथी दोनों ऋषिकुमारों ने जाना। किन्तु राजनीति के कै।टिल्य से परिचित राजा दुष्यन्त ने इसे केवल कपट-मात्र ससभा। इन्होंने हँस कर कहा—''क्रीजाति जो स्वभावतः बात बनाने में कुशला होती है, उसका यह एक अच्छा उदाइरस है।''

ममीहत शकुन्तजा ने कहा—''महाराज ! में दैवदोष से स्मारक चिह्न न दिखा सकी । किन्तु मैं ऐसी बात कहती हूँ जो सुनते ही आपको पूर्व का बृत्तान्त स्मरस होगा।'' राजा—"क्या कहती हो ? मैं सुनने के लिए तैयार हूँ।" शकुन्तला—"आपको याद होगा। एक दिन हम ग्राप नव-

साहिता-मण्डम में घेठे हो। आपको हाल में पुरैन के पत्ते के दोने में पानी था। मेरा पालित एक हिरत का बना मुक्ते देख वहाँ आया। आपने उसे पानी पीने का इशारा किया, परन्तु वह आपको अपरिचित जान कर आपको पास न गया। वही दोना होकर जब मैंने उसे बुलाया वह तुरन्त मेरे पास आया और पानी पीने लगा। तब आपने ज्यहाँ करके कहा--'सब कोई अपनी ही जाति पर विश्वास करता है। हुस दोनों बनवासी हो। इसी से हुस

दोनों की इतनी परस्पर सहासुभूति है।"
राजा—"ऐसे ही बनावटी मीटी वातों से कियाँ पुरुप का सन

मोहित करती हैं।"
गौतमी—''महाराज ! श्राप ऐसी बात न कहें। जो जन्म ही से तपोबन में पत्नी है, वह कपट-ज्यवहार की शिखा कहाँ पावेगी ? कपट करना क्या कभी उसके लिए सन्भव है ?"

राजा--''तपिस्तिनीजी ! नगर हो, या विगवन, कपट-च्यवहार स्त्रियों का स्ताभाविक धर्म है। वह किसी से सीस्तता नहीं पड़ता। कीयल को दूसरे पत्नी के घोंसलों में अपने वजों का पालन कराना

कैन सिखलाता है ?" राकुन्ताला इतनी देर कलेंजे पर पत्थर रख दुष्यन्त की सब बातें सहे जाती थी। अब वह सह न सकी। एक तो निना अपराध के अप्राह्म दोना, उस पर यह मर्सेच्छेदी ज्यह्न बचन उसे सहा न हुआ। सती की अपनी सर्योदा के आगो भय, मिक द्योर लजा का भाव खिर न रख सकी। शकुन्वला ने रुप्ट होकर दुष्यन्त से कहा—''आप अपने ही इदय जैसा सब को समभते हैं ?'' इससे अधिक वह और कुछ न वेलि सकी। ग्लानि श्रीर राप से उसका भाव देख कर मन में सोचा—''इसका क्रोध तो बनावटी वहीं जान पढ़ता। किन्दु में अपने मन की प्रवीति कैसे न कहाँ ? मुभे तो कुछ भी समस्य नहीं होता।"

इस विषय में अधिक वादालुवाद करना निरर्थक जान शारहत ने दुष्यन्त से कहा—''महाराज! यह आपकी पत्नी है। पत्नी के ऊपर पति का सब अधिकार है। चाहे आप इसका त्याग कीजिए, चाहे अपने पास रखिए, जो आपकी इच्छा हो कीजिए। इस सब जाते हैं।"

यह कह कर वे सब जाने की उचात हुए। यह देखं शक्तुन्तला भी रोते रोते उन सबीं के पीछे चली।

डसको साथ आते देख गैतिमी ने शार्क्तरव से कहा—"यह देखेा, शक्रुन्तला रोती रेति इस सनों के साथ आ रही है। उसका देख ही क्या है ? स्वामी ने उसके साथ ऐसा निष्ठुर ज्यवहार किया ! वह किसके पास रहेगी ?"

शार्कृरव ने शकुन्तला को अपते देख डाँट कर कहा—''क्या तुम स्वेच्छाचारिखी होना चाहती हो ?''

शक्तुन्त्रला भय से काँपने लगी। उसकी यह दशा देख राजा ने ऋषिक्तमार से कहा—"आप इन्हें क्यों. कृषा प्रलोभन दे रहे हैं ? जब मैंने इनके साथ ज्याह नहीं किया वह मेरे यहाँ इनका रहना उचित नहीं।"

राजपुरोहित वहीं थे। उन्होंने कहा— "सहाराज! में आप से एक निवेदन करता हूँ। ऋषिकन्या गर्मवती हैं। ब्लोतिषयों में कहा है कि आपके प्रथम पुत्र चक्रवर्ती होंगे। यदि इनके गर्म से उरफा वालक में चक्रवर्ती का लच्छा देख पड़ेगा तो ये आपको विवादिता हैं, इस विपय में सन्देह न रहेगा। और यह न हो तो ये सर्वया आपके द्वारा परिशक होंगी। आपकी आजा हो ते। प्रसर्वकाल तक ये सेरे घर में रहें।"

मुक्ते इसमें कोई आपित नहीं।"

राजपुरेरिहत शकुन्तका को साथ हो अपने घर की धोर बिहा हुए। इघर शार्क्स्य और शारद्धत ने गीतकों को धागे करके तेपोबन की यात्रा की। कुछ ही देर में पुरेरिहच ने लीट कर राजा से कहा—"महाराज! आक्षर्य! वहा ही आक्षर्य! ऐसी ब्रह्मुत घटना कभी बाज तक न देशी थी।"

राजा-"क्या ! कैसी घटना ?"

पर ऐसी घटना कमी न देखी।"

पुरोहित---'मैं शकुन्तला को साम लिये कर ला रहा था। वह प्रपने भाग्य को वार बार धिकार देकर रो रही थी। प्रप्स्पा-तीर्थ के पास होकर जाते समय अचानक एक न्योतिर्मयो की उसे गोद में डठा कर धाकाशमार्ग से ले गई। मेरी इतनी बढ़ी उम्र हुई

शकुन्तला में सम्बन्ध की सभी बाते राजा को आश्चर्य सें

मरी जान पड़ीं! उन्होंने कहा—''जो होते को थी हुई, अब उस बात को लेकर तर्कवितर्क करने को क्या आवश्यकता? आप अपने घर जाइए।'' यह कह कर उन्होंने पुरोहित को विदा किया और आप अपने मन का विषाद दूर करने की इच्छा से विश्राममवन में गये।

यों दी दिन पर दिन बीवने खना। राजा ने राजकार्य में जलभ कर राजुन्तला के सम्बन्ध की सब बातों की मन से अुला दिया। एक दिन शहर के कोतवाल ने एक फ्रॅंग्ट्री लाकर राजा की दिखलाई धीर जनसे कहा—''महाराज! एक धीवर जीहरी के पास यह फ्रॅंग्ट्री वेचने की खाया था। वह कहता है, प्रची-रीध में उसने एक रोहू मळ्ली एकड़ी थी। उसी के ऐट में यह फ्रॅंग्ट्री उसे मिली। किन्छु इस फ्रॅंग्ट्री में महाराज का नाम खुदा है, देख कर बैकिशार उसे चीरी की चीज़ जान कर धीवर को पकड़ लाया है। अब महाराज की जा प्राहा हो।''

फॅन्फ्री देखते ही हुध्यन्त के सिर से पैर तक मानो विज्ञली हैं। एक साथ शकुन्तला के सम्बन्ध की सब बातें उन्हें स्मरण ही आईं। उनकी आंखों के आगे यह मालिनी-तीरवर्ती तपेतन, वह सखियों के साथ शकुन्तला का फूलों के पेड़ में पानी सींचना, वह लताकुच में शकुन्तला से भेट होना, वह आंसू अरे नेत्रों से परस्पर एक दूसरे से निदा माँगना, वह प्रेमालिङ्गन-पूर्वक अँगूठी देना, और अन्त में उसे अपरिचित कह कर स्वीकार न करना आदि सब घटनायें एक साथ उनकी आंसों के सामने नाचने लगीं। वे अचेत हो पढ़े, पर तो भी अपने मन का भाव जिपाकर वेलि—"कोतवाल ! यह अँगूठी मेरी है। दैवयोग से जो चीज़ खे। गई थीं, मिल गई। धीवर निर्दोप है, उसे इनाम देकर विदा कर दे। ।"

कोतवाल--- "जो अप्रज्ञा । कह कर वाहर गया।" यही धरती स्वर्ग है श्रीर यही नरक है। शकुन्तज्ञा की पाकर जिस राजा ने एक दिन अपने की स्वर्गसुख का अधिकारी समभा था, वही म्राज मॅंगूठी पाने से म्रपने को नरक का श्रधिकारी समस्त रहे हैं । उनके मन में मर्मान्तिक-वेदना होने लगी। वे मन ही मन सीचने लगे, पत्नी का वियोग वहुवां को होता है, किन्तु क्षव किसने श्रपनी धर्मपत्नी की इस तरह त्याग दिया १ कहाँ वह हिमालय श्चित तपावन, श्रीर कहाँ हिस्तनापुर ! गर्भवती पतित्रता इतनी दूर का कठिन मार्ग पैदल चल कर आश्रय के लिए मेरे पास आई, किन्तु भाश्रय देना तो दूर रहा, मैंने एक मीठी बात से भी उसकी ख़ातिर न की, वल्कि मर्ममेदी व्यङ्ग वचन से उसके हृदय की वेधित कर उसे विदा कर दिया। इस अपराध का क्या प्रतीकार है ? शक्त-न्तला ने मेरे समभाने की कितनी ही चेष्टावें की, पर मेरी बुद्धि क्यों ऐसी भ्रष्ट हो गई जो मैं किसी तरह नहीं समक्त सका। मैं इतने दिन से राजकाज कर रहा हूँ, श्रमियुक्त जनों के गुग्र-देाष के जानने का अभ्यास रखता हुआ भी, मैं न जान सका कि शक्त-न्तला श्रपराधिनी है या निरपराधा ? जो वैसी भोलीभाली, जिसका

वैसा स्तेह झीर कारुण्य-पूर्व मुखमण्डल है, वह क्या कभी मिथ्या कह सकती हैं ? दूपरे जिन्होंने तपश्चर्या ही में अपनी सारी उम्र विताई, जो जन्म ही के साधु श्रीर नशनिष्ट हैं, उन सहार्ष कण्य ने अपनी कन्या को विवाहिता जान कर ही मेरे पास मेजा, क्या इस पर मैंने एक बार मी विचार न किया ? इस घोर प्राप का प्रायक्षित नहीं हो सकता।

राजा ने मन में कहा:—''यदि श्रव शकुन्तका को कहीं देख पाउँ तो अपने आंद्रुओं से उसके चरम प्रसार कर इस पाप का प्रायश्चित्त कहाँ। पर वह है कहाँ ? क्या इस जन्म में फिर उसका दर्शन होगा ? पुरोहित ने कहा या, वह इस संसार से अन्तर्धात हो गई। शकुन्तका पवित्रता यो। इसी से वह स्वर्गकोक को गई। में पत्नी-दोही पापालमा हूँ। इसी से नरक-यन्त्रणा भोगने के लिए सर्यक्रीक में रह गया।'

राजा यह सोचकर दुखी ये कि उनके पाप का प्रायक्षित इस शरीर से होना कठिन है। पर यह बात न हुई। क्रॅग्ठी हाथ में श्राते ही उनका प्रायश्रित प्रारम्भ हुन्ना । शक्कन्तला का स्मरण उनके साथ विच्छू का काम करने लगा। शकुन्तला के वे धाँसू भरे नयन उसकी वह संकोच भरी कोमल प्रार्थना, उसका वह प्रती-किक रूपमाधुर्य सोते जागते ब्राठों पहर उनके सन को मथित करने लगा। उसकी वह भोली सुरत उन्हें पत भर भी व विसरती थी। शक्तन्तला की चिन्ता ने दुष्यन्त के हृदय की खीखला कर दिया। वे जलहीन भीन की साँवि दिन रात छटपटाने लगे। नरकयन्त्रसा किसे कहते हैं ? इसी अवस्था को । अशान्ति रहित अवस्था में रहने ही का नाम नरक है। जिस पहाड़ के भीतर आग. जलती है उसका बाहरी हिस्सा कुछ दिन हरियालियों से हरा भरा सा देख पडता है, किन्तु उसके मीतर जो तीत्र ज्वाला से सदा दग्ध होता है,

वह कोई नहीं जानता। वह किसी को नहीं स्मता। दुष्यन्त को भी यही अवस्था थी। राजकार्थ में, सिन्य-विश्वह में, निल-कृत्य में लोग देखते थे दुष्यन्त में कुछ भी परिवर्तन नहीं दुश्या है। किन्तु यदि कोई उनके हृदय का मध्य माग देखता तो जानता। वहां कैसी तीव्रज्ञाला दिन रात अधकती है। वहीं तो नरकांत्रि है। उसी के ह्रारा तो मलुष्य के पाप का प्राथिवच होता है। इस चिरकालिक प्राथिवच से राकुन्तला के सम्बन्ध में दुष्यन्त के प्रेम का जो अंश सकाम था वह दम्ब ही गया, किन्तु जो निष्काम था वह वच रहा। मूर्तिमेदी राकुन्तला के बदले आत्ममयी राकुन्तला ने उनके हृदय पर अधिकार किया। वे राकुन्तला के पुनर्वार दर्शन की आशा लागकर उसके गुरुगान से, उसके चित्रतिम्मींय से और उसके मानसिक ध्यान से ही रान्तिलाभ की चेष्टा करने लगे।

इसी समय देवराज इन्ह्रं ने वैत्याखों से सताये जाकर शानु की हवाने के लिए इन्हें स्वर्ग में बुलाया। ये युद्ध में जयलाभ करकी, इन्ह्रं से सन्मानित होकर, उनके रख पर सवार हो मातिल के साथ प्रपनी राजधानी को लीटे आ रहे थे। रास्ते में उन्होंने एक प्रपूर्व शोभासम्पन सीने के सहया आकार का सुन्दर पहाड़ देखा। उस पहाड़ के सम्बन्ध में पूछने पर इन्ह्रं के सारिश्च ने कहा—'' इस पहाड़ का नाम हेमकूट है। देवताओं के पित कश्चप ग्रीर आदिति इसी पर्वत पर आश्रम बना कर तथस्या करते हैं।'

राजा ने कहा-- "जब इस आश्रम के इतना समीप होकर जा रहे हैं तब उन दोनों के बिना दर्शन किये जाना कदापि उचित नहीं। चलिए, उन्हें प्रशास कर लें।" मातलि—"ग्रच्छी बात है। चलिए।"

दोनों हेमकूट पहाड पर उतरे। माविल कश्यप के पास राजा के त्राने की खबर देने गये । राजा त्रपावन देखने की इच्छा से इधर उधर घूमने लगे। कण्व के ब्राश्रम में प्रवेश के समय जैसे एकवार **बनको दहनी सजा फडक डठी थी, वैसे ही अब भी एकबार फड़क** ज्ञी। राजाने अपनी बाँह की विकार देकर कहा-- ''क्यों बुधा फड़क रही है ? अपने सुख को आप ही छोड़ देने से हु:ख के सिवा और क्या भिल सकता है ?" उन्हें कण्व का धाश्रम स्मरग हो। श्राया । इस समय महर्षि कश्यप का बाश्रम देखकर वे श्रीर भी विसुग्ध हुए। क्या ही प्रशान्त भ्रीर पवित्रमाव सर्वत्र छाया है। जिन पदार्थीं की कामना से साधारण तपस्त्रिगण भ्रन्य स्थान में तपस्या करते हैं, यहाँ वे पदार्थ पाकर भी ऋषिगया कठेार तपस्या में लगे थे। इप्रभीष्टदायक कल्पवृत्त के वन में निवास करके भी वे निष्काम होकर केवल वायुसेवन से जीवननिर्वाह कर रहे थे। स्वर्ण-कमल के पराग से सुगन्धित जल में नहा कर, स्फटिंक-शिला पर वैठकर, श्रीर दिव्याङ्गनाओं के साथ रह कर भी वे महात्मा निर्वि--कार चित्त से तपस्या कर रहे थे। मातिल ने सत्य ही कहा था, जी। लोग जैसे मनस्वी होते हैं, उनका ब्राशय भी वैसा ही ऊँचा होता है।"

राजा आश्रम देख रहे थे। ऐसे समय में उन्होंने किसी के। कहते सुना—"बचा! इतना चच्चल न होना।" राजा ने कुत्हरुक्व उस क्रीर दृष्टि फेर कर देखा—"एक क्रोटा सा बालक एक सिंह के चच्चे को बलपूर्वक घसीटे लिये आ रहा है, और दो तप-

स्विनी उसके हाथ से सिंहशावक को खुड़ाने की चेष्टा कर रही हैं। बालक जैसे देखने में सुन्दर है वैसे ही बखवान थीर वेजस्वी भी है।"

उसका सोने सा गारा रङ्ग, वड़ी वड़ा- धाँखें, भाँरे से काले ष्ट्रॅंघराले बाल, पुष्ट शरीर देखकर राजा मोहित है। गये। उनकी इच्छा हुई, एकवार उसे गोद में उठा लें। किन्तु अपरिचित वालक के साथ ऐसा व्यवहार करना उचित नहीं, यही सीचकर विरत हुए। उसी समय बालक ने सिंह के बच्चे का मुँह पकड़ कर कहा-"तू एकवार सुँह वा, मैं तेरे दांच गितूँगा।" वपस्थिनियों ने देखा, लड़का सिंह के वच्चे पर धीरे घीरे ज़्यादा वल प्रकाश कर रहा हैं। उन्होंने उसके हाथ से वच्चे की खुड़ा देने की बार वार चेष्टा की परन्तु वे किसी तरह कुतकार्य न हुईं ! तब एक ने ट्सरी से कहा-"यह सहज ही न मानेगा। आश्रम से इसके लिए एक बिलीना से ब्राम्री । उसमें भूतकर यह माप ही इसे छोड़ देगा ।" यह सुनकर वह खिलौना लाने गई, इथर वालक सिंह के वच्चे की श्रीर भी श्रधिक सताने लगा। उसे देख कर एक तपस्विनी जो उसके पास थी, बोली, "बहाँ कोई ऐसा नहीं है जो इस दुर्विनीत वालक के हाथ से सिंह के छैं।ने की हुड़ा दे।" राजा ने यह **उचित अवसर सम्भः, आगे बढ़कर बालक के हाथ से सिंह के** वच्चे को छुड़ा दिया। बालक के स्पर्श से उनका सम्पूर्ण शरीर श्रानन्द से कण्टिकत हुन्ना। वे हृदय के आवेश को न रोक सके। भट उस लड़के को गोद में उठा लिया । उनका सर्वाङ्ग माने। ग्रमृत से संसिक्त हुआ। उन्होंने सोचा, "यदि दूसरे की सन्तान को गोद

में बिठानें से इतनी ग्रीप होती है, तो न साल्स अपनी सन्तान को गोद में विठाने से कितनी ग्रीप होती होती है हाथ ! यदि में अपनी प्रियतसा का साग न करता, तो मैं भी ऐसी सन्तान पाकर छतार्थ होता।" वालक इतनी देर जैसी उद्दण्डता दिखा रहा था, राजा के पास वह न दिखा, स्थिर होकर उनके मुँह की ओर देखने लगा। राजा ने उससे कहा—"देखां ऋषिक्रमार! यह उपद्रव करने का स्थान नहीं है। यह शान्त वपावन है, यहाँ ऐसा उद्दण्ड न होता चाडिए।"

तपस्त्रिनी बोर्ली—''महाशय ! यह ऋषिक्रमार नहीं है, चत्रियक्रमार है।

त्तत्रियकुमार सुनकर राजा को कुत्हल हुआ।

उन्होंने पूछा—"देवि ! क्या कहा ? यह चत्रियक्कमार है ? किस वंश में इसका जन्म हुआ है।"

तपरिवनी---"पुरुवंश में ।"

राजा चिकत होकर सोचने लगे, "तो क्या मेरी आशा एक-बार ही अमुलक नहीं है ? हो सकता है, पुरुवंगी कितने ही राजा युहापे में बातप्रस्थ आश्रम धारण करते हैं। यह उन्हीं में किसी का अपस्य होगा । अच्छा ! और भी पूछता हूँ, "तपस्विनीजी ! यह आश्रम देवताओं के रहने का है, मनुष्य होकर यह बालक यहाँ कैसे आगा ?"

तपस्तिनी—"इसकी साता एक अप्सरा की कन्या है। उसी सम्बन्ध से उसने यहाँ आकर इसे प्रसव किया।"

राजा का हृदय ग्रीर भी ग्राशान्त्रित हुआ। जन्होंने पूछा, इसके

पिता का नाम क्या है ? तपित्रती मुँह फोर कर वोजी—"उस पत्री-त्यागकर्ता पातकी का कौन नाम खें ?" राजा—"सब बातें तो मेरे साथ घटती हैं। किन्सु क्या

विधाता की इतनी दया होगी जो मेरी आशा फलववी होगी नहीं !
मैं पापात्मा हूँ इसी से इस सग्रुच्चा में पढ़ कर मुग्ध हो रहा
हूँ । इसी समय दूसरी तपितनी ने आश्रम से एक मिट्टी का सुग्गा
लाकर पालक से कहा— ''सर्वदमन! देखें।, कैसा शकुन्त लाई
हूँ । शकुन्त लाई हूँ, इस वाक्य में शकुन्तला ग्रञ्द उसके मुँह
से, सुन कर पालक ने स्वप्न होकर कहा— ''सेरी माँ कहां है ?"

तपिखनी ने कहा—"इसकी माता का नाम शकुन्तजा है, "शकुन्त जाई हूँ" वाक्य में माता का नाम उचारित सुन कर उसकी खोज कर रहा है।"

राजा ने मन में कहा—''अब तुम आशा कर सकते हो। इतना सादस्य विफल नहीं हो सकता। किन्तु यह बालक शकु-न्तला का है, माना, पर वह है कहाँ ? क्या मेरा ऐसा भाग्य है

कि मैं फिर शकुन्तला के दर्शन से कृतार्थ होऊँगा।"

इसी समय पहली वर्गिसनी ने देखा कि सिंहशावक के साथ खेलते समय वालक की बाँह से यन्त्र (तवीज़) खुल कर गिर पड़ा है । उसने लड़के से पूझा---''सर्वदमन! तुम्हारा तवीज़ क्या हुन्ना ?''

राजा उसे समीप ही में पड़ा देख घठाने चले। यह देख तपिलती ने बड़ी घबराहट के साथ उन्हें पुकार कर कहा—''उसे मत छूत्रो, सत छूत्रो।'' किन्तु उमके सना कर देने के पूर्व ही राजा ने उस तबीज़ को उठा खिया और अचस्पे के साथ तपस्किनी से पूछा—''आप तबीज़ उठाने से सुक्षे क्यों रोकती थीं 9''

छन्होंने कहा--''केवल साता ही पिता इस यन्त्र के छूने के प्राधिकारी हैं। बूसरा कोई इसे छू खे तो यह उसे तर्प बन कर इस लेता है।'

राजा--- 'आपने कभी इस तरह की घटना होते अपनी आँख से तेसी हैं ?"

तपस्विती—''एकबार नहीं, कई बार ।'' यह सुसकर राजा ने 'वीर्च तिम्बास किया ।''

्राजा का भावभङ्गी और जनकी बाछित से सर्वेदमत की जाछिति मिछती तुई देखकर ऋषिपक्षी पहले हो से नाना प्रकार की करमना कर रही बीं। इस समय उन्हें नवीज़ उठाते देख कर वनके घारचर्य की सीमा न रही। वे शकुन्तवा से यह इसान्त कहने के छिए घात्रम की श्रीर दैं। ही सर्वेदमन राजा की गोद में सा। इशिपक्षियों के चले जाने पर उसने राजा से कहा—"सुसे छोड़ दों, में मीं के पास वालेंगा।"

राजा-"वेटे, मेरे साथ चलो ।"

बालक-'में दुष्यन्त का बेटा हूँ । तुम्हारा नहीं ।

सुन कर राजा को हैंसी आई। इस दुःख में भी उन्हें सुख का अनुभव हक्या।

इसी समय तपितनी के ग्रुँह से सब वृत्तान्त सुन कर शक्तु-न्तता वहाँ ब्राई । शक्तुन्तता जब दुष्यन्त से तिरस्कृत हुई वी तब

उसकी माँ मेनका उसे अलस्तित रूप से यहाँ ले आई घीटा त वह यहाँ रह कर कठिन वपन्या से समय विवाने लगी। राजः दूर से शकुन्तला को देखा । क्या यह वही शकुन्तला है जो 🐤 दिन प्रात:कालीन खिली सुई कमिलनी की भाँति कण्व के ब्राश्रम-रूपी सरोवर को मुशोमित कर रही थी ? जिसके मुखकमल के सीरम से थाक्रष्ट होकर भ्रमर फूले हुए जतापुष्प की छोड़ कर उसके 🥄 मुँह पर बैठने के लिए लालायित हो रहा था 🛭 जिसके यौवन की शोसा देख कर वसन्त ऋतु की फूली हुई फुलवाड़ी संक्षुचित होती. थी ? दुष्यन्त ने जिसके दर्शन कर अपने विशेष पुण्य का द समम्ता था ? क्या यह वही राकुन्तला है ? राकुन्तला का चेंत् उदास है, उसके होंठ सूखे हैं, कपोल पीले हो गये हैं, आंख भी की बँस गई हैं। सिर के बाल रुख़े हैं, जिन्हें समेट कर वह जटा की माँति बाँधे हुए हैं । गेरुआ वसन पहने हैं । पित को विल्ह से शरीर सूख कर काँटा हो गया है। किन्तु तपश्चर्यों से छन उसके शरीर की कान्ति उज्ज्वल है । दुष्यन्त उस समय रूपयौ युक्त राभोग के योग्य शकुन्तका को नहीं खोजते थे, वे तप:ची कलेवरा शकुन्तला की खोज कर रहे थे। इसलिए वे प्रथम दशी दिन की तरह अंतुप्त नयन से शकुन्तला की देखने लगे। दुष्ट के स्वरूप में भी बहुत कुछ परिवर्तन हो गया था। दिन रात े करते करते उनकी कान्ति मलिन और शरीर खिल्ल हो गया था। दोनों ही परस्पर एक दूसरे को देख कर व्यथित और विस्मित हुए। उन दोनों के मन का माब उस समय कैसा था, यह कीन बुर सकता है 🏿 दुष्यन्त ने शकुन्तला. की ग्रेगर देखा, वह अब भी वहीं

